अभागी का स्वर्ग

शरत्चन्द्र

अभागी का स्वर्ग

(मूल बँगला से अनूदित)

दो शब्द

बँगला के उपन्यास-सम्राट् शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की सम्पूर्ण अमर-कृतियाँ देश-विदेश की अनेकों भाषाओं में अनूदित होकर प्रकाश में आ चुकी हैं; परन्तु हिन्दी में जहाँ एक ओर उनके उपन्यास तथा उपन्यास के रूप में बड़ी-बड़ी कहानियों के अनेकों अनुवाद हुए हैं, वहाँ उनकी लघु-कथाओं के अनुवाद अपेक्षाकृत बहुत कम ही प्रकाश में आए हैं।

रवीन्द्र कथा-माला का अनुवाद-कार्य प्रारम्भ करते समय हमने शरत्बाबू की समस्त लघु-कथाओं का भी प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद करने का जो निश्चय किया था, प्रसन्नता की बात है कि वह इस 'अभागी का स्वर्ग' शीर्षक शरत्-कथा-माला की पहिली पुस्तक से आरम्भ होकर अत्यन्त शीघ्र ही समाप्ति की ओर अग्रसर होने जा रहा है। आशा है, दो-तीन मास के भीतर ही इस कथा-माला की सम्पूर्ण पुस्तकें प्रकाशित होकर पाठकों की सेवा में पहुँच जाएँगी।

प्रस्तुत पुस्तक में शरद्बाबू की आठ लघु-कथाएँ संकलित हैं। सभी कहानियाँ एक-से-एक अधिक सुन्दर, प्रेरणाप्रद, मर्म-स्पर्शी एवं शिल्प की दृष्टि से अत्युत्तम हैं। अनुवाद में केवल मूल-भावों की ही रक्षा नहीं की गई है अपितु वह अक्षरशः हो और प्रवाह में भी शिथिलता न पड़े—इसका भी विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है।

आशा है, रवीन्द्र-कथा-माला की भाँति शरत्-कथा-माला को भी स्नेहपूर्वक अपनाकर, हिन्दी-पाठक हमारे श्रम को सार्थक करेंगे।

—अनुवादक

अन्तिम-विदा देकर, छिपे-छिपे दोनों आँखों के आँसू पोंछकर, शोकार्त्त कन्या और बहुओं को सान्त्वना देने लगे। प्रवल हरि ध्वनि (राम नाम सत्य है) से प्रातःकालीत आकाश को आलोड़ित कर संपूर्ण गाँव साथ-साथ चल दिया। एक अन्य प्राणी भी थोड़ी दूर से इस दल का साथी हो लिया, वह कंगाली की माँ थी। वह अपनी कुटिया के आँगन में उत्पन्न बेंगनों को तोड़कर इस रास्ते से हाट को जा रही थी, इस दृश्य को देखकर फिर नहीं हिला जा सका। रह गया उसका हाट का जाना, रह गए उसके आँचल में वँधे हुए बेंगन—वह आँखों से आँसू बहाती हुई सब के पीछे श्मशान में आ उपस्थित हुई। गाँव के एकान्त कोने में गरुड़ नदी के तट पर श्मशान का। उस स्थान पर पहले से ही लकड़ियों का बोझ, चन्दन के टुकड़े, घृत, धूप, धूनी आदि उपकरण सञ्चित कर दिए गए थे, कंगाली की माँ को समीप जाने का साहस नहीं हुआ, अतः एक ऊँचे टीले पर खड़ी होकर सम्पूर्ण अन्त्येष्टि-क्रिया को प्रारम्भ से अन्त तक उत्सुक आग्रह नेत्रों से देखने लगी। प्रशस्त एवं पर्याप्त चिन्ता के पश्चात् जब शव-स्थापना की गई उस समय उसके दोनों रगे हुए पाँव देखकर उसके दोनों नेत्र शीतल हो गए। उसकी इच्छा होने लगी की वह दौड़कर, मृतक के पाँवों से एक बूंद अलता लेकर अपने मस्तक पर लगाले। बहुत से कण्ठों की हरिध्वनि सहित पुत्र के हाथों से मन्त्रपूत अग्नि जब संयोजित की गई, उस समय उसके नेत्रों से झर-झरकर पानी वरसने लगा, मन-ही-मन बारम्बार कहने लगी, भाग्यवती माँ, तुम स्वर्ग को जा रही हो—मुझे भी आशीर्वाद देती जाओ, मैं भी इसी प्रकार कंगाली के हाथों से अग्नि प्राप्त करूँ। लड़के के हाथ की अग्नि। यह कोई साधारण वात नहीं है! पति, पुत्र, कन्या, नाती, नातिन, दास, दासी, परिजन—सम्पूर्ण गृहस्थी को उज्ज्वल करते हुए यह स्वर्गारोहण—देखकर उसकी छाती फूलने लगी - इस सौभाग्य की वह जैसे फिर गणना ही नहीं कर सकी। सद्य-प्रज्ज्वलित चिता का अजस्र धुआँ नीले रंग की छाया फेंकता हुआ घूम-घूम

कर आकाश में उठ रहा था, कंगाली की माँ को उसके बीच एक छोटे से रथ की मूर्त्ति जैसे स्पष्ट दिखाई दे गई। उस रथ के चारों ओर कितने ही चित्र अङ्कित थे उसके शिखर पर बहुत से लता-पत्र जड़े हुए थे। भीतर जैसे कोई बैठा हुआ था—उसका मुख पहिचान में नहीं आता, परन्तु उसकी माँग में सिंदूर की रेखा थी एवं दोनों पदतल अलता (महावर) से रंगे हुए थे। ऊपर की ओर देखती हुई कंगाली की मां के दोनों नेत्रों से आँसुओं की धारा वह रही थी, इसी बीच एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु के बालक ने उसके आँचल को खींचते हुए कहा, तू यहां आकर खड़ी है माँ, भात नहीं राँधेगी ?

माँ ने चौंक कर पीछे फिर कर देखते हुए कहा, राँधूगी रे ! अचानक ऊपर की ओर उँगली उठाकर व्यग्र स्वर में कहा, देख-देख बेटा—ब्राह्मणी माँ उस रथ पर चढ़कर स्वर्ग जा रही हैं।

लड़के ने आश्चर्य से मुँह उठाकर कहा, कहाँ ? क्षण भर निरीक्षण कर अन्त में बोला, तू पागल हो गई है माँ ! वह तो धूँआ है। फिर गुस्सा होकर बोला, दोपहर का समय हो गया, मुझे भूख नहीं लगती है क्या ? एवं साथ-ही-साथ माँ की आँखों में आँसू देखकर बोला, ब्राह्मणों की बहू मर गई है, तू क्यों रो रही है माँ ?

कंगाली की माँ को अब होश आया। दूसरे के लिए श्मशान में खड़े होकर इस प्रकार आँसू बहाने पर वह मन-ही-मन लज्जित हो उठी, यही क्यों, बालक के अकल्याण की आशंका से तुरंत ही आँखें पोंछ कर तनिक सचेष्ट होकर बोली, रोऊँगी किसके लिए रे—आँखों में धुंआ लग गया, यही तो !

हाँ, धुँआ तो लग ही गया था ! तू रो रही थी।

माँ ने और प्रतिवाद नहीं किया। लड़के का हाथ पकड़कर घाट पर पहुँची, स्वयं भी स्नान किया और कंगाली को भी स्नान कराकर घर लौट आई – श्मशान पर होने वाले संस्कार के अन्तिम भाग को देखना उसके भाग्य में नहीं बदा था।

२

सन्तान के नामकरण के समय पिता-माता की मूर्खता पर विधाता पुरुष अन्तरिक्ष में बैठे हुए अधिकांश समय में केवल हँस कर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाते, तीव्र प्रतिवाद भी करते हैं। इसी से उनका सम्पूर्ण जीवन उनके स्वयं के नामों को ही जैसे मरणपर्यन्त बिराता रहता है। कङ्गाली की माँ के जीवन का इतिहास छोटा-सा है, परन्तु उस छोटे-से कङ्गाल-जीवन ने विधाता के इस परिहास से छुटकारा पा लिया है। उसके जन्म के बाद ही उसकी माँ मर गई, पिता ने क्रुद्ध होकर उसका नाम रक्खा अभागी। माँ थी नहीं, पिता नदी में मछली पकड़ने घूमता रहता था, वह न दिन देखता, न रात। फिर भी न जाने किस प्रकार छोटी-सी अभागी एक दिन कङ्गाली की माँ बनने के लिए बची रही, यह एक आश्चर्य की वस्तु है। जिसके साथ विवाह हुआ, उसका नाम था रसिक बाघ। कुछ दिन बाद ही वह भागी को छोड़कर दूसरे गाँव में चला गया, अभागी अपने अभाग्य एवं उस शिशुपुत्र कङ्गाली को लेकर गाँव में ही पड़ी रही।

उसका वही कङ्गाली बड़ा होकर आज पन्द्रहवें वर्ष में पदार्पण कर रहा है। फिलहाल उसने बेंत का काम सीखना आरम्भ किया है, अभागी को आशा होने लगी है और एक वर्ष तक अपने अभाग्य के साथ जूझ लेने पर उसका दुःख दूर हो जाएगा। यह दुख कैसा है, इसे जिन्होंने दिया है उनके अतिरिक्त और कोई नहीं जानता।

कङ्गाली ने पोखर (कच्चा तालाब) से अँचवन करके लौट कर देखा उसके भोजन की थाली के बचे हुए सामान को माँ एक मिट्टी के पात्र से ढाँक कर रख रही है। आश्चर्यचकित होकर उसने जिज्ञासा की, तुमने नहीं खाया माँ ?

बहुत देर होगई बेटा, अब भूख नहीं रही।

लड़के ने विश्वास नहीं किया, बोला, नहीं भूख क्यों नहीं रही। कहाँ है देखूँ तो तेरी हाँडी।

इस छलना द्वारा बहुत दिनों से कङ्गाली की माँ कङ्गाली को धोखा देती आ रही है, आज उसने हाँड़ी देख कर ही छोड़ी । उसमें केवल एक ही व्यक्ति के भोजन के योग्य भात था। तब वह प्रसन्न मुख से माँ की गोद में जा बैठा। इस आयु के बालक साधारणतः इस प्रकार नहीं करते, परन्तु शिशुकाल से ही अक्सर बीमार बने रहने के कारण माँ की गोद छोड़ कर बाहर के संगी-साथियों में हिलमिल जाने का सुयोग उसे नहीं मिला। इसी जगह बैठकर उसे खेलने-कूदने की साध मिटानी पड़ी है। एक हाथ से गला जकड़कर मुँह के ऊपर मुँह रखकर कङ्गाली ने चकित होते हुए कहा, माँ, तेरा शरीर तो गर्म है, तू क्यों धूप में खड़ी होकर मुर्दे को जलता हुआ देखने के लिए गई ? फिर क्यों जाकर नहा आई ?...मुर्दा जलना क्या तैने...।

माँ ने झटपट लड़के के मुँह को हाथ से दबाते हुए कहा, छिः बच्चे, मुर्दा जलना नहीं कहते, पाप होता है। सती-लक्ष्मी महारानी रथ पर चढ़ कर स्वर्ग को गईं हैं।

बालक ने सन्देह करते हुए कहा, तेरे पास एक ही बात है माँ। रथ पर चढ़ कर भी कहीं कोई स्वर्ग को जाता है।

माँ बोली, मैंने जो आँखों से देखा है कङ्गाली, ब्राह्मणी माँ रथ के ऊपर बैठी थीं। उनके दोनों रंगे हुए दोनों पांवों को सबने अपनी आँखों से देखा है रे !

सब ने देखे हैं ?

सभी ने देखे हैं !

कङ्गाली माँ की छाती से चिपक कर बैठते हुए सोचने लगा। माँ का विश्वास करना ही उसका अभ्यास है, विश्वास करने की ही उसने बचपन से शिक्षा पाई है। वही माँ जब कह रही है कि सबने आँखें लगा कर इतनी बड़ी बात को देखा है, तब अविश्वास करने का फिर कोई कारण नहीं है। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे बोला, तब तो तू भी तो स्वर्ग जाएगी माँ ? बिन्दी की माँ उस दिन राखाल की

बुआ से कह रही थीं, कंगाली की माँ के समान सती-लक्ष्मी दूलों के मुहल्ले में और कोई नहीं है।

कंगाली की माँ चुप रह गई, कंगाली उसी प्रकार धीरे-धीरे कहने लगा, पिता ने जब तुझे छोड़ दिया तब कितने दुःख-कष्टों के बीच तुझे नहीं पड़ना पड़ा। तो भी एक दिन के लिए भी पिता के ऊपर तेरा क्रोध नहीं देखा गया। तेरी आशा थी, कंगाली के बचने पर तेरा दुःख दूर होगा। हाँ, माँ तेरे न बचने पर मैं कहाँ बचता? मैं तो बिना खाए-पीए उतने दिनों तक कब का मर गया होता।

माँ ने लड़के को दोनों हाथों से पकड़ कर छाती से चिपटा लिया। वस्तुतः अनेकों प्रकार के परामर्श देने वाले लोगों का अभाव न होते हुए भी सहायता करने वाला व्यक्ति उस दिन कोई नहीं मिल था। यही उत्पात क्यों, यथेष्ट उपद्रव भी उसके साथ किया गया। उस बात को स्मरण कर अभागिनी की आँखों से पानी बहने लगा। लड़का अपने हाथ से उन्हें पोंछता हुआ बोला, काँथरी बिछादूँ माँ, सोएगी?

माँ चुप रही। कङ्गाली ने चटाई बिछाई, काँथरी बिछाई, माचे के ऊपर से तकिया उठाकर धर दिया फिर उसे बिछौने की ओर खींच कर ले जाने लगा तो माँ बोली, कङ्गाली, आज तुझे काम पर जाने की जरूरत नहीं है।

काम-काज न करने का प्रस्ताव कङ्गाली को बहुत अच्छा लगा, परन्तु कहा, जलपान के दो पैसे फिर वह नहीं देगा माँ।

न दे—आ तुझे एक कथा सुनाऊँ।

और नहीं लुभाना पड़ा, कङ्गाली उसी क्षण माँ की छाती से लग कर लेटते हुए बोला, तो अब कह। राजपुत्र, कोतवाल का पुत्र और वह पक्षिराज घोड़ा...

अभागिनी ने राजपुत्र, कोतवाल के पुत्र और पक्षिराज घोड़े की बात से कहानी आरम्भ की। ये सब उसने दूसरों से कितने ही दिनों की सुनी एवं कितनी ही बार कही हुई उपकथा थीं। परन्तु कुछ देर बाद ही कहाँ गया उसका राजपुत्र, और कहाँ गया उसका कोतवाल का पुत्र—उसने इस प्रकार उपकथा आरंभ की कि जो उसने दूसरे से नहीं सीखी थी—स्वय की रचना थी। उसका स्वर जितना बढ़ने लगा, उष्ण रक्तस्रोत जितने द्रुतवेग से मस्तिष्क में बहने लगा, उतनी ही वह जैसे नई-नई उपकथाओं के इन्द्रजाल की रचना करती हुई चलने लगी। उनका विराम नहीं था, विच्छेद नहीं था—कङ्गाली की छोटी-सी देह बार-बार रोमांचित होने लगी। भय, विस्मय, पुलक से वह जोर से माँ के गले को पकड़कर, उसकी छाती में जैसे समा जाने की इच्छा करने लगा।

बाहर दिन डूब चुका था, सूर्य अस्ताचल को चले गए, सन्ध्या की म्लान छाया प्रगाढ़ होती हुई चराचर को व्याप्त कर उठी, परंतु घर के भीतर आज फिर दीपक नहीं जला, गृहस्थ का शेष कर्त्तव्य पूरा करने के लिए कोई उठा नहीं, निबिड़ अन्धकार में केवल रुग्ण माता का अवोध गुञ्जन निस्तब्ध पुत्र के कानों में सुधावर्षण करता हुआ चलने लगा। वह उसी श्मसान और श्मसान-यात्रा की कहानी थी। वही रथ, वही दोनों रंगे हुए पाँव, वही उसका स्वर्ग जाना। किस प्रकार शोकार्त्त पति ने अन्तिम पदधूलि देकर रोते हुए विदा दी, किस प्रकार हरिध्वति करते हुए लड़के माता को वहन करते हुए ले गए, उसके पश्चात् सन्तान के साथ की अग्नि। वह अग्नि केवल अग्नि ही नहीं कंगाली, वह तो साक्षात् हरिस्वरूप थी। उसका आकाश तक उठा हुआ, धुँआ, धुँआ नहीं था बच्चे, वह तो स्वर्ग का रथ था। कंगालीचरण, मेरे बेटे!

क्यों माँ?

तेरे हाथ की अग्नि यदि पा लूँ बेटे, तो ब्राह्मणी म[illegible] भाँति

मैं भी स्वर्ग जा सकूँगी।

कंगाली ने अस्फुट स्वर में केवल यह कहा, जा—ऐसा नहीं कहते।

माँ उस बात को शायद सुन भी नहीं सकी, उष्ण निःश्वास छोड़ कर कहने लगी, छोटी जात की कहने पर भी तब कोई घृणा नहीं कर सकेगा—दुखी होने पर भी कोई रोक कर नहीं रख सकेगा। आह! लड़के के हाथ की अग्नि—रथ को तो आना ही पड़ेगा।

लड़के ने मुँह के ऊपर मुँह रख कर भग्न कण्ठ से कहा, बोलो मत, माँ मुझे बड़ा डर लगता है!

माँ ने कहा, और देख कंगाली, तेरे पिता को एक बार पकड़ लाऊँगी, वैसे ही अपने पाँव की धूल मस्तक पर देकर मुझे विदा देंगे। वैसे ही पाँवों में अलता, माथे पर सिन्दूर देकर—परन्तु कौन उसे देगा? तू देगा न रे कंगाली? तू मेरा लड़का है, तू ही मेरी लड़की है, तू ही मेरा सर्वस्व है। कहते-कहते उसने लड़के को एक साथ छाती से चिपटा लिया।

३

अभागी के जीवन-नाटक का अन्तिम अङ्क समाप्त हो चला है। विस्तार अधिक नहीं सामान्य ही है। जान पड़ता है तीस वर्ष ही अब तक पार हुए होंगे या न हुए होंगे। अन्त भी हुआ उसी प्रकार सामान्यभाव से। गाँव में कविराज नहीं थे, दूसरे गाँव में उनका निवास था। कंगाली जाकर रोया-धोया, हाथ-पाँव जोड़े, अन्त में लोटा गिरवी रख कर उन्हें एक रुपए की प्रणामी (सलामी) दी। उस सब का कितना आयोजन करना पड़ा; खरल, मधु, अदरक का सत्व, तुलसी के पत्तों का रस। कंगाली की माँ ने लड़के से नाराज

होकर कहा, क्यों तू मुझे बिना बताए लोटा गिरवी रखने चला गया बच्चे। हाथ झुका कर कई गोलियाँ लेकर उन्हें माथे से लगा कर फेंकते हुए कहा, अच्छी होऊँगी, तो वैसे ही हो जाऊँगी, बाग्दी-दूलों के घर में कोई कभी भी औषधि खाने से नहीं बचता।

दो-तीन दिन इसी प्रकार बीत गए। पड़ौसी खबर पाकर देखने के लिए आए, वे जिस मुष्टियोग को जानते थे, हिरन के सींग का घिसा हुआ पानी, गिट्टी कौड़ी जला कर शहद में मिलाकर चटा देना इत्यादि अव्यर्थ औषधियों का पता देकर सब अपने काम से चले गए। बालक कङ्गाली घबरा उठा, माँ ने उसे गोद में खींचते हुए कहा, कविराज की गोलियों से कुछ नहीं होता बेटे, और उन लोगों की औषधियों से क्या काम चलेगा ? मैं ऐसे ही अच्छी हो जाऊँगी।

कङ्गाली ने रोते हुए कहा, तुमने गोलियाँ तो खाई ही नहीं माँ, चूल्हे में फेंक दीं। ऐसे क्या कोई अच्छा होता है ?

मैं ऐसे ही अच्छी हो जाऊँगी। अच्छा देखूँ तू थोड़ा-सा भात-वात बना कर खा ले, मैं भी देखूँगी।

कङ्गाली पहली बार अपटु हाथों से भात राँधने में प्रवृत्त हुआ। न तो माँड़ ही निकाल सका, न अच्छी तरह पसा ही सका। चूल्हा उससे जलता नहीं—भीतर पानी गिर पड़ने से धुँआ होता है; भात पसारते समय चारों ओर गिर पड़ता है; माँ के नेत्र छलछला आए। स्वयं एकबार उठने की चेष्टा की, परन्तु माथा सीधा न कर सकी, खाट पर ही लुढ़क गई। खाना बन जाने पर बालक को पास बुलाकर किस प्रकार क्या करना होता है इसका विधिवत उपदेश करते समय उसका क्षीण कण्ठ अवरुद्ध हो गया, आँखों से केवल जल की अविरल धारा बहने लगी।

गाँव का ईश्वर नाई नाड़ी देखना जानता था, दूसरे दिन सबेरे उसने हाथ देख कर उसी के सामने मुँह को गम्भीर बना लिया। कङ्गाली की माँ ने इसका अर्थ समझा, परन्तु उसे भय भी नहीं लगा।

सब लोगों के चले जाने पर उसने लड़के से कहा, इस बार एकबार उन्हें बुलाकर ला सकता है बेटे ?

किसे माँ ?

उन्हीं को रे—उस गाँव में जो चले गए हैं—

कङ्गाली ने समझते हुए कहा, पिता को ?

अभागी चुप रह गई।

कङ्गाली बोला, वे आएँगे क्यों माँ ?

अभागी को स्वयं भी यथेष्ट सन्देह था, तो भी धीरे-धीरे कहा, जाकर कहना, माँ केवल आपके पाँवों की धूलि चाहती है।

वह उसी समय जाने को उद्यत हो गया तब वह उसका हाथ पकड़ कर बोली, थोड़ा-सा रोना-धोना बेटे, कहना माँ जा रही है।

कुछ ठहर कर बोली, लौटते समय नाइन-भाभी से थोड़ा-सा लता लेते आना कङ्गाली, मेरा नाम लेते ही वह दे देगी। मुझे बहुत प्यार करती है।

प्यार उसे बहुत-सी करती हैं। ज्वर होने की अवधि से माँ के मुख से इन कई वस्तुओं की बातें इतनी बार इतनी प्रकार से सुनी हैं कि वह वहाँ से रोता-रोता यात्रा पर चल दिया।

४

दूसरे दिन रसिक दूले समयानुसार जब आ उपस्थित हुआ उस समय अभागी को और अधिक होश नहीं था। मुँह पर मृत्यु की छाया पड़ रही थी, आँखों की दृष्टि इस संसार के कार्य को त्याग कर किसी अनजाने देश में चली गई थी। कङ्गाली ने रोकर कहा, अरी माँ ! पिता आए हैं—पाँव की धूलि लोगी न !

माँ शायद समझी, शायद नहीं समझी, शायद उसकी गहराई

तक सञ्चित वासना ने संस्कार की भाँति उसकी दबी हुई चेतना पर आघात पहुँचाया। इस मृत्युपथ के यात्री ने अपनी विवश भुजाओं को शय्या से बाहर बढ़ाकर हाथ झुका दिए।

रसिक हतबुद्धि के समान खड़ा रहा। पृथ्वी पर उसकी पद-धूलि का भी कोई प्रयोजन है, इसे भी कोई चाह सकता है, यह उसकी कल्पना से परे था। बिन्दो की बुआ खड़ी हुई थी, उसने कहा, दो बाबा, थोड़ी-सी पाँवों की धूलि दो।

रसिक आगे बढ़ आया। जीवन में जिस स्त्री को उसने प्यार नहीं दिया, भोजन-वस्त्र नहीं दिया, कोई खोज-खबर नहीं की, मृत्यु-काल में उसे केवल थोड़ी-सी पदधूलि देते समय वह रो उठा। राखाल की माँ बोली, ऐसी सती-लक्ष्मी ब्राह्मण-कायस्थों के घर में न जन्म कर हम दूलों के घर में क्यों जन्मी? इस बार उसकी गति सुधार दो बेटा—कङ्गाली के हाथ से अग्नि पाने के लोभ में उसने अपने प्राण दे दिए हैं।

अभागी के अभाग्य के देवता ने परोक्ष में बैठ कर क्या सोचा था, पता नहीं, परन्तु बालक कङ्गाली की छाती में यह बात जैसे तीर की भाँति विंध गई।

उस दिन, दिन का समय तो कट गया, पहली रात भी कट गई; परन्तु सबेरे के लिए कङ्गाली की माँ और प्रतीक्षा नहीं कर सकी। कौन जाने इतनी छोटी जाति के लिए भी स्वर्ग के रथ की व्यवस्था है अथवा नहीं, अथवा अन्धेरे में पैदल चलकर ही उन्हें रवाना होना पड़ता है—परन्तु यह समझ में आगया कि रात पूरी समाप्त न होने पर ही वह इस दुनियाँ को त्याग गई।

झोंपड़ी के आँगन में एक बेल का पेड़ है, कहीं से कुल्हाड़ी लाकर रसिक ने उस पर चोट की अथवा नहीं की, परन्तु जमींदार का दरवान कहीं से, दौड़ा चला आया और उसके गाल पर तड़ाक से एक चाँटा कस दिया; कुल्हाड़ी को छीनता हुआ बोला, बेटा यह क्या

सब लोगों के चले जाने पर उसने लड़के से कहा, इस बार एकबार उन्हें बुलाकर ला सकता है बेटे ?

किसे माँ ?

उन्हीं को रे—उस गाँव में जो चले गए हैं—

कङ्गाली ने समझते हुए कहा, पिता को ?

अभागी चुप रह गई।

कङ्गाली बोला, वे आएँगे क्यों माँ ?

अभागी को स्वयं भी यथेष्ट सन्देह था, तो भी धीरे-धीरे कहा, जाकर कहना, माँ केवल आपके पाँवों की धूलि चाहती है।

वह उसी समय जाने को उद्यत हो गया तब वह उसका हाथ पकड़ कर बोली, थोड़ा-सा रोना-धोना बेटे, कहना माँ जा रही है।

कुछ ठहर कर बोली, लौटते समय नाइन-भाभी से थोड़ा-सा ता। लेते आना कङ्गाली, मेरा नाम लेते ही वह दे देगी। मुझे बहुत प्यार करती है।

प्यार उसे बहुत-सी करती हैं। ज्वर होने की अवधि से माँ के मुख से इन कई वस्तुओं की बातें इतनी बार इतनी प्रकार से सुनी हैं कि वह वहाँ से रोता-रोता यात्रा पर चल दिया।

४

दूसरे दिन रसिक दूले समयानुसार जब आ उपस्थित हुआ उस समय अभागी को और अधिक होश नहीं था। मुँह पर मृत्यु की छाया पड़ रही थी, आँखों की दृष्टि इस संसार के कार्य को त्याग कर किसी अनजाने देश में चली गई थी। कङ्गाली ने रोकर कहा, अरी माँ! पिता आए हैं—पाँव की धूलि लोगी न !

माँ शायद समझी, शायद नहीं समझी, शायद उसकी गहराई

तक सञ्चित वासना ने संस्कार की भाँति उसकी दबी हुई चेतना पर आघात पहुँचाया। इस मृत्युपथ के यात्री ने अपनी विवश भुजाओं को शय्या से बाहर बढ़ाकर हाथ झुका दिए।

रसिक हतबुद्धि के समान खड़ा रहा। पृथ्वी पर उसकी पद-धूलि का भी कोई प्रयोजन है, इसे भी कोई चाह सकता है, यह उसकी कल्पना से परे था। बिन्दो की बुआ खड़ी हुई थी, उसने कहा, दो बाबा, थोड़ी-सी पाँवों की धूलि दो।

रसिक आगे बढ़ आया। जीवन में जिस स्त्री को उसने प्यार नहीं दिया, भोजन-वस्त्र नहीं दिया, कोई खोज-खबर नहीं की, मृत्यु-काल में उसे केवल थोड़ी-सी पदधूलि देते समय वह रो उठा। राखाल की माँ बोली, ऐसी सती-लक्ष्मी ब्राह्मण-कायस्थों के घर में न जन्म कर हम दूलों के घर में क्यों जन्मी? इस बार उसकी गति सुधार दो बेटा—कङ्गाली के हाथ से अग्नि पाने के लोभ में उसने अपने प्राण दे दिए हैं।

अभागी के अभाग्य के देवता ने परोक्ष में बैठ कर क्या सोचा था, पता नहीं, परन्तु बालक कङ्गाली की छाती में यह बात जैसे तीर की भाँति बिंध गई।

उस दिन, दिन का समय तो कट गया, पहली रात भी कट गई; परन्तु सवेरे के लिए कङ्गाली की माँ और प्रतीक्षा नहीं कर सकी। कौन जाने इतनी छोटी जाति के लिए भी स्वर्ग के रथ की व्यवस्था है अथवा नहीं, अथवा अन्धेरे में पैदल चलकर ही उन्हें रवाना होना पड़ता है—परन्तु यह समझ में आगया कि रात पूरी समाप्त न होने पर ही वह इस दुनियाँ को त्याग गई।

झोंपड़ी के आँगन में एक बेल का पेड़ है, कहीं से कुल्हाड़ी लाकर रसिक ने उस पर चोट की अथवा नहीं की, परन्तु जमींदार का दरवान कहीं से दौड़ा चला आया और उसके गाल पर तड़ाक से एक चाँटा कस दिया; कुल्हाड़ी को छीनता हुआ बोला, बेटा यह क्या

सब लोगों के चले जाने पर उसने लड़के से कहा, इस बार एकबार उन्हें बुलाकर ला सकता है बेटे ?

किसे माँ ?

उन्हीं को रे—उस गाँव में जो चले गए हैं—

कङ्गाली ने समझते हुए कहा, पिता को ?

अभागी चुप रह गई ।

कङ्गाली बोला, वे आएँगे क्यों माँ ?

अभागी को स्वयं भी यथेष्ट सन्देह था, तो भी धीरे-धीरे कहा, जाकर कहना, माँ केवल आपके पाँवों की धूलि चाहती है ।

वह उसी समय जाने को उद्यत हो गया तब वह उसका हाथ पकड़ कर बोली, थोड़ा-सा रोना-धोना बेटे, कहना माँ जा रही है ।

कुछ ठहर कर बोली, लौटते समय नाइन-भाभी से थोड़ा-सा त लेते आना कङ्गाली, मेरा नाम लेते ही वह दे देगी । मुझे बहुत र करती है ।

प्यार उसे बहुत-सी करती हैं । ज्वर होने की अवधि से माँ के मुख से इन कई वस्तुओं की बातें इतनी बार इतनी प्रकार से सुनी हैं कि वह वहाँ से रोता-रोता यात्रा पर चल दिया ।

४

दूसरे दिन रसिक दूले समयानुसार जब आ उपस्थित हुआ उस समय अभागी को और अधिक होश नहीं था । मुँह पर मृत्यु की छाया पड़ रही थी, आँखों की दृष्टि इस संसार के कार्य को त्याग कर किसी अनजाने देश में चली गई थी । कङ्गाली ने रोकर कहा, अरी माँ ! पिता आए हैं—पाँव की धूलि लोगी न !

माँ शायद समझी, शायद नहीं समझी, शायद उसकी गहराई

तक सञ्चित वासना ने संस्कार की भाँति उसकी दबी हुई चेतना पर आघात पहुँचाया। इस मृत्युपथ के यात्री ने अपनी विवश भुजाओं को शय्या से बाहर बढ़ाकर हाथ झुका दिए।

रसिक हतबुद्धि के समान खड़ा रहा। पृथ्वी पर उसकी पद-धूलि का भी कोई प्रयोजन है, इसे भी कोई चाह सकता है, यह उसकी कल्पना से परे था। बिन्दो की बुआ खड़ी हुई थी, उसने कहा, दो बाबा, थोड़ी-सी पाँवों की धूलि दो।

रसिक आगे बढ़ आया। जीवन में जिस स्त्री को उसने प्यार नहीं दिया, भोजन-वस्त्र नहीं दिया, कोई खोज-खबर नहीं की, मृत्यु-काल में उसे केवल थोड़ी-सी पदधूलि देते समय वह रो उठा। राखाल की माँ बोली, ऐसी सती-लक्ष्मी ब्राह्मण-कायस्थों के घर में न जन्म कर हम दूलों के घर में क्यों जन्मी ? इस बार उसकी गति सुधार दो बेटा—कङ्गाली के हाथ से अग्नि पाने के लोभ में उसने अपने प्राण दे दिए हैं।

अभागी के अभाग्य के देवता ने परोक्ष में बैठ कर क्या सोचा था, पता नहीं, परन्तु बालक कङ्गाली की छाती में यह बात जैसे तीर की भाँति विंध गई।

उस दिन, दिन का समय तो कट गया, पहली रात भी कट गई; परन्तु सवेरे के लिए कङ्गाली की माँ और प्रतीक्षा नहीं कर सकी। कौन जाने इतनी छोटी जाति के लिए भी स्वर्ग के रथ की व्यवस्था है अथवा नहीं, अथवा अन्धेरे में पैदल चलकर ही उन्हें रवाना होना पड़ता है—परन्तु यह समझ में आगया कि रात पूरी समाप्त न होने पर ही वह इस दुनियाँ को त्याग गई।

झोंपड़ी के आँगन में एक बेल का पेड़ है, कहीं से कुल्हाड़ी लाकर रसिक ने उस पर चोट की अथवा नहीं की, परन्तु जमींदार का दरवान कहीं से दौड़ा चला आया और उसके गाल पर तड़ाक से एक चाँटा कस दिया; कुल्हाड़ी को छीनता हुआ बोला, बेटा यह क्या

तेरा अपना पेड़ है जो काटने लग गया ?

रसिक गाल पर हाथ फिराने लगा, कङ्गाली रोता हुआ-सा बोला, वाह, यह तो मेरी माँ के हाथ से लगाया हुआ पौधा है दरवानजी ! पिताजी को तुमने खामखाह क्यों मारा ?

हिन्दुस्थानी दरबान तब उसे भी एक गाली देकर मारने चला, परन्तु वह अपनी मरी हुई माँ की मृतदेह से स्पर्श किए हुए बैठा था, अतः अशौच के भय से उसके शरीर पर हाथ नहीं मारा। शोरगुल से एक भीड़ जमा होगई, किसी ने भी इस बात से इन्कार नहीं किया कि विना आज्ञा लिए रसिक का पेड़ काटना ठीक नहीं था। वे सब फिर दरवानजी के हाथ-पाँव जोड़ने लगे, कि वे अनुग्रह करके जैसे एक हुक्म दे दें। कारण, बीमारी के समय जो कोई देखने को आया था, कङ्गाली की माँ उसी का हाथ पकड़ कर अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्त कर गई थी।

दरवान भूल में आ जाने वाला पात्र नहीं था, उसने हाथ ाकर कहा, यह सव चालाकी उसके समीप नहीं चल सकती।

ज़मींदार स्थानीय व्यक्ति नहीं थे; गाँव में उनकी एक कचहरी है, गुमाश्ता अधरराय उनके कारगुज़ार हैं। सव लोग जिस समय दरवान के समीप व्यर्थ अनुनय-विनय करने लगे, कङ्गाली ऊर्ध्व श्वासें लेकर दौड़ता हुआ एकदम कचहरी वाले मकान में जा उपस्थित हुआ। उसने लोगों के मुँह से सुना था, पियादे लोग घूँस लेते हैं। उसे निश्चित विश्वास हो गया कि इतने वड़े असङ्गत अत्याचार की वात यदि मालिक को जता दी जाय तो इसका कोई प्रतिकार हुए विना न रहेगा। हाय रे अबोध ! वंगाल देश के ज़मींदार और उनके कर्मचारियों को वह जानता नहीं था। सद्य मातृहीन वालक शोक तथा उत्तेजना से उद्भ्रान्त होकर एकदम ऊपर चढ़ता चला आया। अधर-राय हाल ही में सन्ध्यापूजा तथा थोड़ा-वहुत जलपान करने के वाद वाहर आए थे, विस्मित और क्रुद्ध होकर वोले, क्या है रे ?

मैं कंगाली हूँ। दरवान ने मेरे पिता को मारा है।

ठीक किया। अभागा लगान नहीं देता शायद?

कंगाली बोला, नहीं बाबूजी, पिताजी पेड़ काट रहे थे—मेरी माँ मर गई है, कहते-कहते वह अपना रुदन और नहीं रोक सका।

सबेरे के समय इस रोने-धोने से अधर अत्यन्त विरक्त हो उठे। लड़का मुर्दे को छूकर आया है, क्या पता यहाँ भी कुछ छू-छा न दिया हो। धमकाते हुए बोले, माँ मर गई है तो नीचे जाकर खड़े हो। अरे कौन है रे, इस जगह थोड़ा-सा गोबर-पानी डाल दो। किस जाति का लड़का है तू?

कंगाली ने भयभीत हो आँगन में उतर कर खड़े होकर कहा, हम लोग दूले हैं।

अधर ने कहा, दूले? दूले के मुर्दे के लिए लकड़ी का क्या होगा, सुनूँ तो?

कंगाली बोला, माँ जो मुझे अग्नि देने के लिए कह गई है? आप पूछ लीजिए न बाबूजी, माँ तो सभी से कह गई है, सभी ने इस बात को सुना है। माँ की बात कहते समय उसके प्रत्येक क्षण के अनुरोध-उपरोध तुरन्त ही याद आ जाने से उसका कण्ठ मानो रुलाई के कारण फट पड़ना चाहने लगा।

अधर ने कहा, माँ को जलाना चाहता है तो पेड़ के दाम पाँच रुपए लाओ। ला सकेगा?

कंगाली जानता था यह असम्भव है। उसका उत्तरीय खरीदने के लिए मूल्य के रूप में उसके भात खाने की पीतल की थाली को बिन्दी की बुआ एक रुपये में गिरवी रखने गई है, इसे वह आँखों से देख आया है। उसने गरदन को हिलाया, बोला, नहीं।

अधर ने मुँह को अत्यन्त विकृत बनाते हुए कहा, नहीं तो माँ को ले जाकर नदी के बहाव में बहा दे। किसके पेड़ पर तेरा बाप

कुल्हाड़ी चलाने जा रहा है—पाजी, अभागा, बदमाश।

कंगाली बोला, वह हमारे आँगन का पेड़ है बाबूजी ? वह तो मेरी माँ के हाथ का बोया हुआ पौधा है।

हाथ का बोया हुआ पेड़ है ! पाँड़े, सुअर के गले में धक्क मार कर बाहर निकाल दो तो।

पाँड़े ने आकर गले में धक्का दिया एवं ऐसी बातें कहीं कि जिन्हें केवल ज़मींदार के कर्मचारी कह सकते है।

कंगाली धूलि झाड़कर उठ खड़ा हुआ, उसके बाद धीरे-धी बाहर निकल गया, क्यों उसने मार खाई, क्या उसका अपराध थ लड़का इसे सोच भी नहीं पाता।

गुमाश्ते के निर्विकार हृदय में दाग तक नहीं पड़ा। पड़ने प यह नौकरी उसे नहीं मिलती। कहा, परेश, देख तो इस बेटा क लगान बाकी पड़ा है कि नहीं। हो तो इसका जाल-वाल जो कुछ ह छीन ले आकर रख देना—अभागा भाग कर जा सकता है।

मुखर्जियों के घर श्राद्ध का दिन बीच में केवल एक दिन बाक है। समारोह का आयोजन गृहिणी के उपयुक्त होने का प्रयत्न हो रह है। वृद्ध ठाकुरदास स्वयं ही देख-रेख करते हुए घूम रहे हैं, कंगाल ने आकर उनके सामने खड़े होकर कहा, पण्डितजी, मेरी माँ म गई है।

तू कौन है ? क्या चाहता है तू ?

मैं कंगाली हूँ। माँ कह गई है उसे अग्नि देने के लिए।

तो दे न।

कचहरी की घटना इस बीच सब के मुँह से प्रचारित हो चुव थी, एक आदमी ने कहा, उसे शायद एक पेड़ चाहिए। यह कह क उसने घटना को प्रकट कर दिया।

मुखोपाध्याय ने विस्मित और विरक्त होकर कहा, सनो दस्व

बातें ! हमें ही कितनी लकड़ी की जरूरत है, कल के बाद परसों काम है जा-जा, यहाँ कुछ नहीं होगा—यहाँ कुछ नहीं होगा। यह कहकर अन्यत्र चल दिए।

भट्टाचार्य महाशय, समीप ही बैठे हुए फर्द बना रहे थे, वे बोले, तेरी जाति में कोई कब जलाया जाता है रे—जा, मुँह में थोड़ी-सी आग रखकर नदी की धार में मिट्टी दे देना।

मुखोपाध्याय महाशय का बड़ा लड़का व्यस्त भाव से इस ओर से कहीं को जा रहा था, उसने कान खड़े कर कुछ सुनते हुए कहा, देखते हैं भट्टाचार्य महाशय, ये सब बेटे ब्राह्मण कायस्थ हो जाना चाहते हैं। कह कर काम की जल्दी में और कहीं चला गया।

कंगाली ने और प्रार्थना नहीं की। इन दो घण्टों के अनुभव से संसार में वह जैसे एकदम बूढ़ा हो गया था। चुपचाप धीरे-धीरे अपनी मरी हुई माँ के पास जा उपस्थित हुआ।

नदी की धार के पास गड्ढा खोदकर अभागी को सुला दिया गया। राखाल की माँ ने कंगाली के हाथ में एक पुआल की आँटी जला कर दे दी। उसी हाथ से माँ के मुख को स्पर्श करवा कर हटवा दिया। तदुपरान्त सबने मिलकर मिट्टी से ढँक कर कंगाली के माँ के अन्तिम चिह्न तक को विलुप्त कर दिया।

सब अपने कामों में व्यस्त हो गए—परन्तु उस पुआल की आँटि से जो थोड़ा-सा धुँआ निकल कर आकाश की ओर उठ रहा था, उसकी ओर अपलक नेत्रों से देखता हुआ कंगाली ऊर्ध्व-दृष्टि से स्तब्ध खड़ा हुआ था।

यह कहानी जिस समय की है, उस समय ब्रह्मदेश (बर्मा) अँग्रेजों की अधीनता में नहीं आया था। उस समय उसके अपने राजा-रानी थे, पात्र-मित्र थे, सेना-सामन्त थे; उस समय तक वे अपने देश पर स्वयं ही शासन करते थे।

मण्डले राजधानी थी, परन्तु राजवंश के अनेकों व्यक्ति देश के विभिन्न शहरों में जाकर बस गए थे।

ऐसा लगता है कि कोई व्यक्ति बहुत समय पूर्व ही पेंगू से पाँच कोस दक्षिण की ओर इमेदिन गाँव में आकर रह उठा था।

उसकी बड़ी अट्टालिका थी, बड़ा बगीचा था, बहुत धन-दौलत थी, बड़ी ज़मीदारी थी। इन सब के मालिक की जब, एक दिन उसके परलोक से पुकार हुई, उस समय मित्र को बुलाकर कहा—बा-को, इच्छा थी तुम्हारे लड़के के साथ अपनी लड़की का विवाह कर जाऊँगा। परन्तु वह समय आया नहीं। मा-शोए रह जाएगी, उसे देखना।

इससे अधिक कहने की उसने आवश्यकता नहीं समझी। वा-को उसका बचपन का मित्र है। एक दिन उसके पास भी बहुत-सी धन-दौलत थी, केवल मन्दिर बनवाने और भिखारियों को खिलाने में आज वह केवल सर्वहारा ही नहीं, ऋणग्रस्त भी है। तो भी इस व्यक्ति को अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति के साथ एकमात्र कन्या को भी निर्भयतापूर्वक सौंप देने में उसे लेशमात्र बाधा नहीं हुई। मित्र का पहिचान लेने का इतना बड़ा सुयोग ही उसने इस जीवन में पाया था। परन्तु यह दायित्व वा-को को अधिक दिन वहन नहीं करना पड़ा। उसका भी उस पार का सम्मन आ पहुँचा एवं उस महामान्य परवाने को मस्तक पर रखकर बुढ़ापे के वर्ष का चक्र पूरा न घूमते हुए भी, जहाँ का भार तहीं फेंककर अज्ञात दिशा की ओर प्रस्थान कर गया।

इस धर्मप्राण दरिद्र व्यक्ति को गाँव के लोग जितना प्यार करते थे, जितनी श्रद्धा-भक्ति रखते थे, वैसे ही प्रचण्ड आग्रह से उन्होंने इसके मृत्यु-उत्सव को मनाना आरम्भ कर दिया।

वा-को की मृत्यु-देह माला-चन्दन से सुसज्जित हो अर्थी पर लिटाई गई एवं नीचे खेल-कूद-नृत्य-गीत और आहार-विहार के श्रोत रात-दिन अविराम बहने लगे। लगता था इसका शायद अन्त ही न होगा।

पितृ-शोक के इस उत्कट आनन्द से क्षणभर के लिए किसी प्रकार भागकर वा-थिन एक निर्जन वृक्ष के नीचे बैठकर रो रहा था, अचानक चौंकते हुए घूमकर देखा, मा-शोये उसके पीछे आकर खड़ी हुई है। उसने चादर के घेरे से अपने दाहिने हाथ द्वारा आँखें पौंछ लीं एवं पास बैठकर उसके दाहिने हाथ को अपने हाथ में खींचकर धीरे-धीरे बोली—पिताजी मर गए हैं, परन्तु तुम्हारी मा-शोये तो अभी तक बची हुई है।

२

वा-थिन तस्वीर बनाता था। उसने अपने अंतिम चित्र को एक

एक सौदागर के हाथों राजा के दरबार में भिजवा दिया। राजा ने तस्वीर ग्रहण कर ली एवं प्रसन्न होकर अपनी बहुमूल्य अँगूठी पुरस्कार में दे दी।

आनन्द से मा-शोये की आँखों में पानी भर आया, उसने उसके पास खड़ी होकर मृदु कण्ठ से कहा—वा-थिन ! संसार में तुम सबसे बड़े चित्रकार होगे।

वा-थिन हंसा, कहा—पिताजी का ऋण शायद चुका सकूँगा।

उत्तराधिकार-सूत्र से मा-शोये ही उसकी एकमात्र महाजन थी। इसीलिए इस बात से वह सबकी अपेक्षा अधिक लज्जित होती थी। बोली, तुम बार-बार इस प्रकार ताने दोगे तो फिर मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगी।

वा-थिन चुप रह गया। परंतु ऋण दिए बिना पिता की मुक्ति नहीं होगी, इतनी बड़ी विपत्ति की बात स्मरण कर उसका हृदय जैसे सिहर उठा।

वा-थिन का परिश्रम आजकल अत्यन्त बढ़ गया है। जातक कथाओं में से एक नवीन चित्र बना रहा है, आज सारे दिन मुँह उठा कर भी नहीं देखा।

मा-शोये प्रतिदिन जिस प्रकार आती थी, आज भी उसी प्रकार आई थी। वा-थिन के शयन-गृह, बैठने का कमरा, तस्वीर बनाने का कमरा—सब को अपने हाथों से सजा-सँवार जाती। नौकर-नौक-रानियों के ऊपर इस काम का भार डालते हुए उसका किसी प्रकार साहस नहीं होता।

सामने ही एक दर्पण था, उसके ऊपर वा-थिन की छाया पड़ रही थी। मा-शोये बहुत देर तक एकटक देखती हुई बैठकर अचानक एक निःश्वास छोड़ती हुई बोली, वा-थिन, तुम हम लोगों की भाँति स्त्री होते तो अबतक देश की रानी बन जाते।

वा-थिन ने मुँह उठाकर मुस्कराते हुए कहा, कैसे बताओ तो?

राजा तुम्हें ब्याह कर सिंहासन पर ले जाते । उनके अनेक रानियाँ हैं, परन्तु ऐसा रंग, ऐसे केश, ऐसा मुख क्या उनके पास भी है ? यह कह कर उसने काम में मन लगाया, परन्तु वा-थिन के मन को लगा, मण्डाले में वह जब तस्वीर बनाना सीख रहा था, तब ऐसी ही बात वह बीच-बीच सुना करता था।

तब उसने हँस कर कहा, परन्तु रूप को चुराने का उपाय होने पर तुम शायद मुझे ठुकराकर अबतक राजा के बाँईं ओर जा बैठतीं।

मा-शोये ने इस अभियोग का कोई उत्तर नहीं दिया, केवल मन-ही-मन बोली, तुम नारी की भाँति दुर्बल हो, नारी की भाँति कोमल हो, उन्हीं की भाँति सुन्दर हो—तुम्हारे रूप की सीमा नहीं है।

इस रूप के समीप वह अपने को बहुत ही छोटा समझती है।

२

वसन्त के प्रारम्भ में इस इमेदिन गाँव में प्रतिवर्ष अत्यन्त समारोह सहित घुड़दौड़ होती है । आज उसी उपलक्ष में गाँव के बाहर से बहुत लोगों का समागम हुआ है।

मा-शोये धीरे-धीरे वा-थिन के पीछे आकर खड़ी होगई । वह एकाग्रचित्त से तस्वीर बना रहा था, इसी से उसका पदशब्द नहीं सुन सका।

मा-शोये ने कहा, मैं आई हूँ, घूम कर देखो। वा-थिन ने चकित हो, घूमकर देखा, विस्मित होकर जिज्ञासा की, अकस्मात ऐसी साज-सज्जा किसलिए ?

वाह, तुम्हें शायद मालूम ही नहीं है, आज हमलोगों की घुड़-दौड़ है ? जो विजयी होगा, वही आज मुझे माला पहिनाएगा !

कहाँ, सो तो सुना ही नहीं, कहकर वा-थिन अपनी तूलिका

एक सौदागर के हाथों राजा के दरबार में भिजवा दिया। राजा ने तस्वीर ग्रहण कर ली एवं प्रसन्न होकर अपनी बहुमूल्य अँगूठी पुरस्कार में दे दी।

आनन्द से मा-शोये की आँखों में पानी भर आया, उसने उसके पास खड़ी होकर मृदु कण्ठ से कहा—वा-थिन! संसार में तुम सबसे बड़े चित्रकार होगे।

वा-थिन हँसा, कहा—पिताजी का ऋण शायद चुका सकूँगा।

उत्तराधिकार-सूत्र से मा-शोये ही उसकी एकमात्र महाजन थी। इसीलिए इस बात से वह सबकी अपेक्षा अधिक लज्जित होती थी। बोली, तुम बार-बार इस प्रकार ताने दोगे तो फिर मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगी।

वा-थिन चुप रह गया। परंतु ऋण दिए बिना पिता की मुक्ति नहीं होगी, इतनी बड़ी विपत्ति की बात स्मरण कर उसका हृदय जैसे सिहर उठा।

वा-थिन का परिश्रम आजकल अत्यन्त बढ़ गया है। जातक कथाओं में से एक नवीन चित्र बना रहा है, आज सारे दिन मुँह उठा कर भी नहीं देखा।

मा-शोये प्रतिदिन जिस प्रकार आती थी, आज भी उसी प्रकार आई थी। वा-थिन के शयन-गृह, बैठने का कमरा, तस्वीर बनाने का कमरा—सब को अपने हाथों से सजा-सँवार जाती। नौकर-नौकरानियों के ऊपर इस काम का भार डालते हुए उसका किसी प्रकार साहस नहीं होता।

सामने ही एक दर्पण था, उसके ऊपर वा-थिन की छाया पड़ रही थी। मा-शोये बहुत देर तक एकटक देखती हुई बैठकर अचानक एक निःश्वास छोड़ती हुई बोली, वा-थिन, तुम हम लोगों की भाँति स्त्री होते तो अबतक देश की रानी बन जाते।

वा-थिन ने मुँह उठाकर मुस्कराते हुए कहा, कैसे बताओ तो?

राजा तुम्हें ब्याह कर सिंहासन पर ले जाते । उनके अनेक
नयाँ हैं, परन्तु ऐसा रंग, ऐसे केश, ऐसा मुख क्या उनके पास भी

यह कह कर उसने काम में मन लगाया, परन्तु वा-थिन के मन
लगा, मण्डाले में वह जब तस्वीर बनाना सीख रहा था, त
ती ही बात वह बीच-बीच सुना करता था ।

तब उसने हँस कर कहा, परन्तु रूप को चुराने का उपाय होने
र तुम शायद मुझे ठुकराकर अबतक राजा के बाँई ओर जा
बैठतीं ।

मा-शोये ने इस अभियोग का कोई उत्तर नहीं दिया, केवल
मन-ही-मन बोली, तुम नारी की भाँति दुर्बल हो, नारी की भाँति
कोमल हो, उन्हीं की भाँति सुन्दर हो—तुम्हारे रूप की सीमा
नहीं है ।

इस रूप के समीप वह अपने को बहुत ही छोटा समझती है ।

२

वसन्त के प्रारम्भ में इस इमेदिन गाँव में प्रतिवर्ष अत्यन्त
समारोह सहित घुड़दौड़ होती है । आज उसी उपलक्ष में गाँव के
बाहर से बहुत लोगों का समागम हुआ है ।

मा-शोये धीरे-धीरे वा-थिन के पीछे आकर खड़ी होगई । वह
एकाग्रचित्त से तस्वीर बना रहा था, इसी से उसका पदशब्द नहीं
सुन सका ।

मा-शोये ने कहा, मैं आई हूँ, घूम कर देखो । वा-थिन ने चकि
हो, घूमकर देखा, विस्मित होकर जिज्ञासा की, अकस्मात ऐ
साज-सज्जा किसलिए ?

वाह, तुम्हें शायद मालूम ही नहीं है, आज हमलोगों की घु
दौड़ है ? जो विजयी होगा, वही आज मुझे माला पहिनाएगा !

...हाँ, सो तो सुना ही नहीं, कहकर वा-थिन अपनी तूलि

को पुनः उठाने जा रहा था, मा-शोये उसके कण्ठ से लिपटते हुए वोली, नहीं सुना, नहीं, नहीं। परन्तु तुम उठो—और कितनी देर करोगे ?

ये दोनों प्रायः समवयस्क हैं—हो तो वा-थिन दो-चार महीने वड़ा हो सकता है, परन्तु वचपन से इसी प्रकार उन्होंने ये उन्नीस वर्ष काट दिए हैं। खेल किया है, विवाद किया है, मार-पीट की है—और प्यार किया है।

सामने के वड़े शीशे में दो मुख उसी समय प्रस्फुटित दो गुलाव के फ़लों की भाँति खिल उठे, वा-थिन ने दिखाते हुए कहा—यह देखो—

मा-शोये कुछ देर तक चुपचाप इन दोनों चेहरों की ओर अतृप्त नेत्रों से देखती रही। अचानक आज पहलीवार उसके मन को लगा, वह भी वहुत सुन्दर है। आवेश में उसके दोनों नेत्र मुँद आए, धीरे-धीरे वोली, मैं जैसे चाँद का कलङ्क हूँ। वा-थिन और भी पास उसके मुँह को खींचता हुआ वोला, नहीं, तुम चाँद का कलङ्क नहीं हो—किसी का कलङ्क नहीं हो—तुम चाँद की चाँदनी हो। एक वार अच्छी तरह देखो तो सही।

परन्तु आँखें खोलने का मा-शोये को साहस नहीं हुआ, वह उसी भाँति दोनों आँखों को बन्द किए रही।

शायद इसी तरह वहुत समय वीत जाता, परन्तु एक वड़ा नर-नारियों का झुण्ड नाचता-गाता सामने की सड़क पर होकर उत्सव में योग देने चला जारहा था। मा-शोये व्यस्त होकर उठ खड़ी हुई, कहा, चलो, समय होगया।

परन्तु मेरा जाना तो एकदम असम्भव है मा-शोये।

क्यों ?

इस तस्वीर को पाँच दिन के भीतर तय्यार करके देना है।

न देने पर ?

वह मण्डाले चला जाएगा, तब तस्वीर भी नहीं लेगा, रुपए भी नहीं देगा।

रुपए की चर्चा मे मा-शोये को कष्ट पहुँचता था, लज्जा अनुभव होती थी। रुष्ट होकर बोली, किन्तु इसलिए ही तो तुम्हें इस तरह जी-तोड़ परिश्रम नहीं करने दे सकती।

वा-थिन ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। पिता के ऋरण को स्मरण कर उसके मुँह पर उदासी आगई और वह एक व्यक्ति की दृष्टि से छिपी न रह सकी।

कहा, मुझे बेच देना, मैं दूने दाम दूँगी।

वा-थिन को इसमें सन्देह नहीं था, हँसते हुए पूछा, परन्तु इस का करोगी क्या ?

मा-शोये गले का बहुमूल्य हार दिखाती हुई बोली, इसमें जितने भी मोती हैं, जितने भी पन्ने हैं, सबसे इस तस्वीर को सजाकर, तदुपरान्त शयन-गृह में अपनी आँखों के ऊपर टाँग कर रक्खूँगी।

उसके बाद ?

उसके बाद जिस दिन रात में बहुत बड़ा चाँद निकलेगा और खुली हुई खिड़की के भीतर से उसकी चाँदनी का प्रकाश तुम्हारे सोए हुए मुँह के ऊपर खेल करेगा...

उसके बाद ?

उसके बाद तुम्हारी नींद तोड़ कर...

बात समाप्त नहीं हो पाई। नीचे मा-शोये की बैलगाड़ी प्रतीक्षा कर रही थी, उसके गाड़ीवान की उच्चकण्ठ से पुकार सुनाई दी—

वा-थिन व्यस्त होकर बोला, उसके बाद की कथा फिर सुनूंगा, परन्तु अभी नहीं। तुम्हारा समय होगया—जल्दी जाओ।

परन्तु समय निकल जाने का कोई लक्षरण मा-शोये के आचरण में नहीं दिखाई दिया। कारण, उसने और भी अच्छी तरह बैठते हुए कहा, मेरा शरीर अस्वस्थ जान पड़ता है, मैं नहीं जाऊँगी।

नहीं जाओगी ? वचन जो दिया है, सब लोग गर्दन उठाए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, यह जानती हो ?

मा-शोये ने जोर से सिर हिलाते हुए कहा, भले ही करें। वचन-भङ्ग की ऐसी लज्जा मुझे नहीं है—मैं नहीं जाऊँगी !

छि:....

तब तुम भी चलो ?

हो सकता तो अवश्य चलता, परन्तु मैं अपने कारण से तुम्हें सत्य-भङ्ग नहीं करने दूँगा। और देर मत करो, जाओ।

उसके गम्भीर मुख और शान्त दृढ़ कण्ठ-स्वर को सुन कर मा-शोये उठकर खड़ी होगई। अभिमान से मुँह को म्लान करती हुई बोली, तुम अपनी सुविधा के लिए मुझे दूर करना चाहते हो, परन्तु अब कभी भी तुम्हारे पास नहीं आऊँगी।

एक क्षण के लिए बा-थिन के कर्त्तव्य की दृढ़ता स्नेह के जल से गल गई, उसने उसे पास खींचते हुए मुस्कुराकर कहा, इतनी बड़ी प्रतिज्ञा मत कर बैठो मा-शोये—मैं जानता हूँ, इसका अन्त क्या होगा। परन्तु अब और विलम्ब करने से काम नहीं चलेगा।

मा-शोये ने वैसे ही विषण्णमुख से उत्तर दिया, मेरे न आने पर खाने-पहिनने से लेकर सभी बातों में तुम्हारी जो दशा होगी, उसे मैं सह नहीं सकूँगी, यह जानकर ही तुम मुझे खदेड़ पा रहे हो। यह कह कर वह प्रत्युत्तर की अपेक्षा किए बिना ही द्रुतपद से कमरे से बाहर निकल गई।

४

प्राय: अपराह्ण के समय मा-शोये की रौप्य जटित मयूरपंखी बैलगाड़ी जब मैदान में आ पहुँची, तब एकत्र जनसमूह प्रचण्डकलरव से कोलाहल कर उठा।

वही युवती है, वह सुन्दरी है, वह अविवाहिता है, वह विपुल धन की अधिकारिणी है। मनुष्य के यौवन-राज्य में उसका स्थान

बहुत ऊँचा है। इसीलिए यहाँ भी बड़े सम्मान का आसन उसी के लिए निश्चित हो गया। वह आज पुष्पमाला वितरण करेगी। तत्पश्चात् जो भाग्यवान इस रमणी के गले में जयमाला को सबसे पहले पहना सकेगा, उसी का भाग्य ही आज जैसे संसार के लिए ईर्ष्या करने की एकमात्र वस्तु होगा।

सुसज्जित घोड़ों को पीठ पर लाल रंग की पोशाक पहने हुए अनेकों सवार उत्साह और चञ्चल के आवेग-कष्ट को संयत किए हुए थे। देख कर लगता था, आज संसार में उनके लिए असाध्य कुछ भी नहीं है।

क्रमशः समय समीप आ पहुँचा एवं जो कुछ लोग भाग्य की परीक्षा करने के लिए उद्यत थे, वे सब पक्ति बाँध कर खड़े हो गए एवं क्षणभर वाद ही घण्टी के साथ-साथ मरने-जीने की चिन्ता त्यागकर उन लोगों ने अपने घोड़े छोड़ दिए।

यही वीरत्व है, यही युद्ध का अंश है। मा-शोये के पिता-पितामह आदि सभी युद्ध व्यवसायी थे, नारी होने पर भी उसकी धमनियों में उन्हीं का रक्त बह रहा था। जो विजयी होगा, उसे अपना सम्पूर्ण हृदय देकर स्वागत न करने की क्षमता उसमें नहीं थी।

अतः जब दूसरे गाँव का रहने वाला एक अपरिचित युवक ने आरक्त-देह, कम्पित मुख, पसीने से भरे हुए हाथों से उसके कण्ठ में जयमाला पहिना दी, तब उसके आग्रह की अतिशयता अनेक सम्भ्रान्त स्त्रियों की आँखों में खटके बिना न रही।

लौटते समय उसने उसे अपने बगल में ही गाड़ी में स्थान दिया एवं सजल कण्ठ से कहा, आपके लिए मैं वहुत डर गई थी, इतनी बड़ी-बड़ी ऊँची दीवारों में किसी भी तरह यदि कहीं भी पाँव चूक जाता!

युवक ने नम्रता से गर्दन झुकाली, परन्तु इस अनुपम साहसी

वलिष्ठ वीर के साथ मा-शोये मन-ही-मन अपने उस दुर्बल, कोमल और सभी विषयों में अपटु चित्रकार के साथ तुलना न कर सकी।

इस युवक का नाम था, पो-थिन। बातों-ही-बातों में परिचय होने पर ज्ञात हुआ, यह भी उच्चवंशीय, यह भी धनी एवं उसी का दूर का रिश्तेदार है।

मा-शोये ने आज बहुत लोगों को अपने घर पर सान्ध्य-भोज में निमन्त्रित किया था, वे सब तथा और भी बहुत से लोग भीड़ किए हुए गाड़ी के साथ-साथ आ रहे थे। आनन्द के आवेश में उन लोगों के ताण्डव नृत्य से उठी हुई धूलि से धूसरित मेघ और संगीत के असह्य निनाद से सन्ध्या का आकाश उस समय एकदम आच्छन्न अभिभूत हो रहा था।

यह भयंकर जनता जिस समय उसके घर के सामने से आगे निकल गई, उस समय क्षणभर के लिए बा-थिन भी अपने काम को ..ड़, खिड़की पर आकर चुपचाप देखने लगा।

५

सन्ध्या-भोजन के प्रसंग में दूसरे दिन मा-शोये ने बा-थिन से कहा, कल की सन्ध्या आनन्द से कटी। बहुत लोग दया करके आए। चूंकि तुम्हें समय नहीं था इसलिए तुम्हें नहीं बुलवाया।

उस चित्र को वह प्राणपण से समाप्त कर रहा था, मुँह उठाए बिना ही बोला, अच्छा ही किया। यह कह कर वह काम करने लगा।

आश्चर्य से मा-शोये स्तम्भित होकर बैठी रही। बात के बोझ से उसका पेट फूल रहा था, कल बा-थिन काम के बोझ से उत्सव में योग नहीं दे सका था, इसी से आज बड़ी देर तक बहुत-सी बातें करने की इच्छा लेकर वह आई थी, परन्तु सब-कुछ उलटा हो गया। केवल

अकेले-अकेले प्रलाप चल सकता है, परंतु अलाप का काम नहीं चलता इसीलिए वह केवल स्तव्ध होकर बैठी रही, किसी भी तरह दूसरे वक्ष का प्रबल उदास्य एवं गम्भीर-नीरवता के रुद्ध द्वार को खोल कर भीतर प्रविष्ट होने का आज भरोसा नहीं कर सकी। प्रतिदिन जो सब छोटे-मोटे काम वह कर जाती है, आज वे सब भी पड़े रहे— किसी में हाथ लगाने की उसकी प्रवृत्ति नहीं हुई। इसी भाव से बहुत समय बीत गया—एक बार भी वा-थिन ने मुँह नहीं उठाया, एकबार भी एक प्रश्न भी नहीं किया। कल की इतनी बड़ी घटनाके सम्बन्ध में भी उसका जैसे लेशमात्र भी कौतूहल नहीं है, काम के बीच साँसछोड़ने का भी उसे वैसा अवसर नहीं है।

बहुत देर बाद निःशव्द कुण्ठित और लज्जित बनी रह कर अन्त में वह उठकर कोमल-स्वर से बोली, आज मैं जाती हूँ।

वा-थिन ने चित्र के ऊपर आँखें गढ़ाए हुए ही कहा, जाओ।

जाने के समय मा-शोये को जैसे वह इस व्यक्ति के हृदय की बात को जान गई है। पूछ लूँ, एकवार उसकी इच्छा हुई, परन्तु मुँह नहीं खोल सकी, चुपचाप बाहर निकल गई।

घर में पाँव रखते ही देखा, पो-थिन बैठा हुआ है। गतरात्रि के आनन्द-उत्सव के लिए धन्यवाद देने आया है। अतिथि को मा-शोये ने यत्न पूर्वक बैठाया।

उस व्यक्ति ने पहले तो मा-शोये के ऐश्वर्य की बात उठाई, फिर उसके वंश की बात, उसके पिता की ख्याति की बात, उसके राजद्वार में सम्मान की बात ऐसी ही कितनी अनर्गल बातें बकता चला गया।

इन सब में से कुछ को तो उसने सुना और कुछ बातें उसके अन्यमनस्क कानों में पहुँची ही नहीं। परन्तु वह व्यक्ति केवल बलिष्ठ एवं अत्यन्त साहसी घुड़सवार ही नहीं, अत्यन्त धूर्त्त भी था। मा-शोये

की यह उदासीनता उससे छिपी न रही। उसने मण्डाले के राज-परिवार का प्रसंग उठा कर अन्त में जब सौन्दर्य की आलोचना आरम्भ की एवं कृत्रिम सरलता से परिपूर्ण होकर इस रमणी को लक्ष्य एवं उपलक्ष करते हुए बारम्बार उसके रूप और यौवन को इङ्गित करने लगा, उस समय उसे मन-ही-मन अत्यन्त लज्जा होने लगी, परन्तु एक अपरूप आनन्द गौरव का अनुभव किए बिना भी न रह सकी।

वार्त्तालाप समाप्त होने पर पो-थिन से जब विदा ली, तब आज की रात के लिए भी वह भोजन का निमन्त्रण ले गया।

परन्तु चले जाने पर उसकी बातों को मन-ही-मन दुहरा कर मा-शोये का सम्पूर्ण मन छोटा एवं ग्लानि से भर उठा तथा निमंत्रित कर डालने के लिए विरक्ति और वितृष्णा की सीमा भी न रही। सने झटपट और भी कई व्यक्ति बन्धु-बान्धवों को निमन्त्रित करने लिए नौकर के हाथों पत्र भिजवा दिए। अतिथिगण यथा समय आ उपस्थित हुए एवं आज भी अनेक हँसी-तमाशे, अनेक गप्पें, अनेक नृत्य-गीतों के साथ जब भोजन-वोजन समाप्त हुआ, तब रात और अधिक शेष नहीं थी।

क्लान्त परिश्रान्त होकर वह सोने को गई; परन्तु आँखों में नींद नहीं आई; परन्तु आश्चर्य यही था कि जिसकी वजह से अपना प्रत्येक क्षण इस प्रकार काट रही थी, उसकी एक बात भी मन में नहीं उठी। वह सब जैसे कितने ही युगों का पुराना अकिञ्चत्कर व्यापार है—ऐसा ही शुष्क, ऐसा ही नीरस। उसे केवल याद आने लगा कोई दूसरा ही व्यक्ति, जो उसी के उद्यान प्रान्त में एक निर्जन घर में इस समय निर्विघ्न है—आज की इतनी बड़ी धमा-चौकड़ी का लेशमात्र भी उसके कानों में जाने के लिए छोटा-सा मार्ग भी कहीं से ढूँढ़े न पा सका।

चिरदिनों का अभ्यास, सबेरा होते ही मा-शोये का ...
फिर वह वा-थिन के घर में जा पहुँची।

प्रतिदिन की भाँति आज भी उसने केवल एक 'आओ' कहकर अपनी सहज अभ्यर्थना समाप्त कर काम में मन लगा दिया, ...तु पास बैठ कर भी एक अन्य व्यक्ति को आज मन में यही लगने ...ा, वह कर्म निरत नीरव व्यक्ति जैसे बहुत दूर हट गया है।

बहुत देर तक मा-शोये कोई बात ढूँढ़ कर भी नहीं पा ...की। तदुपरान्त हट कर जिज्ञासा की, तुम्हारा काम और कितना ...की है ?

बहुत।

तब इन दो दिनों तक क्या किया ?

वा-थिन इसका उत्तर न देकर चुरुट का बक्स उसकी ओर बढ़ाते हुए बोला, शराब की यह गन्ध मैं सह नहीं सकता।

मा-शोये इस संकेत को समझ गई। जल-भुन कर हाथ से बक्स को जोर से सरकाती हुई बोली, मैं सबेरे-सबेरे चुरुट नहीं पीती— चुरुट पीकर गन्ध छिपाने की चेष्टा भी नहीं करती—मैं नीच कुल की लड़की नहीं हूँ।

वा-थिन ने मुँह उठाकर शान्त कण्ठ से कहा, शायद तुम्हारे कपड़ों में किसी प्रकार लग गई होगी, शराब की गन्ध की बात मैं बना कर नहीं कह रहा।

मा-शोये विद्युत-वेग से उठ खड़ी हुई—तुम जैसे नीच हो वैसे ही ईर्ष्यालु भी हो; तभी मेरा बिना दोष के अपमान किया है। अच्छा, यही ठीक है, अपने कपड़े-लत्तों को मैं तुम्हारे घर में सदैव के लिए हटाए ले जा रही हूँ। यह कह कर वह ...

अपेक्षा किए विना ही शीघ्रतापूर्वक घर छोड़कर जाने लगी, वा-थिन ने पीछे से पुकार कर उसी भाँति संयतस्वर में कहा, मुझे नीच और ईर्ष्यालु किसी ने कभी भी नहीं कहा, तुम एकदम ही अधोमार्ग पर जाने के लिए उद्यत हो गई हो, इसी से सावधान किया है।

मा-शोये ने लौट कर खड़े होते हुए कहा, अधोमार्ग पर कैसे चली गई?

यही मुझे तो लगता है।

अच्छा इस समझ को स्वयं ही लिए रहो; परन्तु जिसके पिता आशीर्वाद दे गए हैं, सन्तान के लिए अभिशाप नहीं छोड़ गए, उसके तुम्हारे मन का मेल नहीं हो सकता।

यह कह कर वह चली गई, परन्तु वा-थिन स्थिर होकर बैठा हा। कोई किसी कारण उसे इस प्रकार मर्मान्तिक रूप से वेंध सकता है, इतना प्यार एक दिन में ही इतना बड़ा विष हो सकता है, इसे वह सोच भी नहीं सका।

घर आकर देखा पो थिन बैठा है। वह चकित हो

उठक धुर स्वर में थोड़ा-सा हँसा।

नों भौंहें शायद अनजान में ही

विशेष प्रयोजन है?

की सीढ़ी से मा-शोये

एकदम हतबुद्धि

हँसी के साथ

बजाता बाहर

बचपन से जिन दो व्यक्तियों का कभी एक क्षण के लिए भी विच्छेद नहीं हुआ, भाग्य की विडम्बना से आज एक मास से अधिक का समय बीत गया है, किसी के साथ किसी का साक्षात्कार नहीं हुआ।

मा-शोये यह कह कर अपने को समझाने की चेष्टा करती है कि यह एक तरह से अच्छा ही हुआ कि जो मोह का जाल इतने लम्बे समय से उसे कठिन बन्धन में बाँध कर रक्खे हुए था, वह टूट गया। और उसके साथ लेश-मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। इस धनी कन्या की उद्दाम प्रकृति ने पिता के समय में भी कई वार ऐसे ही अनेकों काम करना चाहे हैं, जिन्हें वह केवलमात्र गम्भीर और संयतचित्त वा-थिन की विरक्ति के भय से ही नहीं कर पाई है; परन्तु आज वह स्वाधीन—एकमात्र स्वयं अपनी मालिक है। कहीं भी किसी के भी समीप और लेशमात्र भी जवाबदेही नहीं करती है। इसी एक बात को लेकर उसने मन-ही-मन अनेक उधेड़-बुन, अनेक जोड़-तोड़ कीं, परन्तु एक दिन के लिए भी कभी अपने हृदय के निगूढ़तम गृह के द्वार को खोलकर नहीं देखा कि वहाँ क्या है। देखने पर देख लेती, अब तक वह स्वयं को ही ठगती आई है। उस निभृत गोपन-कक्ष में दिन-रात दोनों ही आमने-सामने बैठे हुए हैं—प्रेमालाप नहीं कर रहे, कलह नहीं कर रहे—केवल चुपचाप दोनों की आँखों से आँसू बहे चले जा रहे हैं।

अपने जीवन का यह एकान्त करुण-चित्र ही उसके मन की आँखों से अगोचर था इसीलिए इस बीच घर में उसके अनेक उत्सव रात्रियों के निष्फल अभिनय हो गए—पराजय की लज्जा ने उसे धूलि के हाथ नहीं मिला दिया।

परन्तु आज का दिन ठीक उसी तरह नहीं कटना चाहता।

क्यों, वही बात कहेंगे ।

जन्मतिथि के उपलक्ष में प्रतिवर्ष उसके घर में एक आमोद-अह्लाद और भोजन-दान का अनुष्ठान होता है । आज वही आयोजन कुछ अतिरिक्त आडम्बर के साथ हो रहा है । घर के दास-दासी से शुरू करके पड़ोसियों तक ने आकर योग दिया है । केवल उसका स्वयं का मन किसी काम में नहीं लग रहा । सवेरे से ही आज उसके मन को लग रहा है, सब व्यर्थ है, सब पाखण्ड है । न जाने कैसे इतने दिनों तक उसे यह लगता रहा कि वह भी दुनियाँ के अन्य सभी लोगों की भाँति है, वह भी मनुष्य है—वह भी ईर्ष्या से परे नहीं है । उसके घर में यह सब जो आनन्द-उत्सव के अपर्याप्त और नए-नए आयोजन हो रहे हैं, इनकी बात क्या उसकी बन्द खिड़की को भेद कर उस निभृत कक्ष में जाकर पहुँचती नहीं है ? उसके काम में क्या बाधा नहीं देती ?

सम्भव है वह अपनी तूलिका को छोड़कर कभी स्थिर होकर ठता हो, कभी अस्थिर द्रुतपदों से घर के भीतर घूमता हो, कभी निद्रा-विहीन तप्त-शय्या पर लेटकर सारी रात जला मरता हो, कभी और .. किन्तु छोड़ो इन सब को ।

कल्पना में प्रतिदिन मा-शोये एक प्रकार का तीक्ष्ण आनन्द अनुभव करती थी, परतु आज अचानक मन को लग रहा है कुछ भी नहीं—कुछ भी नहीं । उसके किसी भी काम में उसे कोई विघ्न नहीं पड़ता । सब मिथ्या है, सब धोखा है । वह पकड़ना भी नहीं चाहता—पकड़ाई भी नहीं देना चाहता । वह कैसी दुर्बल देह अकस्मात किस प्रकार मानो एकदम पहाड़ की भाँति, कठिन और अचल हो गई है—कहीं की कोई भी झंझा उसे रत्तीभर भी विचलित नहीं कर पाती ।

परन्तु तो भी जन्मतिथि के उत्सव का विराट् आयोजन आडम्वर सहित चल रहा था । पो-थिन आज सब जगह, सब कामों में लगा था । यही क्यों, परिचितों के बीच एक काना फूँसी चल रही थी

कि एक दिन यही व्यक्ति इस घर का स्वामी हो जाएगा—एवं जान पड़ता है, वह दिन अधिक दूर भी नहीं है।

गाँव के स्त्री-पुरुषों से मकान भर गया—चारों ओर आनन्द कलरव। परन्तु जिसके लिए यह सब है वही मनुष्य अनमना है—उसी का मुख निरानंद की छाया से आच्छन्न है, परन्तु यह छाया बाहरी किसी व्यक्ति की आँखों में प्रायः नहीं पड़ी—पड़ी केवल घर के दो-एक पुराने दास-दासियों की आँखों में। और पड़ी शायद उनके—जो अलक्ष्य होने पर भी सब-कुछ देख लेते हैं। केवल वे ही देखने लगे, इस लड़की के समक्ष आज सब केवल विडम्बना है। इस जन्मतिथि के दिन प्रतिवर्ष जो व्यक्ति सबसे पहले चुपचाप उसके गले में आशीर्वाद की माला पहिना देता था, आज वह व्यक्ति नहीं है, वह माला नहीं है, उस आशीर्वाद का आज नितान्त अभाव है।

मा-शोये के पिता के समय के एक वृद्ध ने आकर कहा, छोटी बिटिया, कहाँ है उसको तो देखा ही नहीं ?

बूढ़ा कुछ समय पहले ही नौकरी से अवकाश ग्रहण कर चला गया था, उसका घर भी दूसरे गाँव में था—इस मनमुटाव की बात वह नहीं जानता था। आज आकर दास-दासियों से सुना था। मा-शोये उद्धत भाव से बोली, देखने की जरूरत है, उसके घर जाओ—यहाँ क्यों आए ?

ठीक है, वहीं जाता हूँ, कह कर वृद्ध चला गया। मन-ही-मन कह गया, केवल उसे अकेले देखने से तो काम नहीं चलेगा—तुम दोनों व्यक्तियों को ही मैं एक साथ देखना चाहता हूँ। अन्यथा इतनी दूर से व्यर्थ ही चलकर आया हूँ।

परन्तु बूढ़े के मन की बात इस नवीना से छिपी नहीं रही। उस समय तक एक प्रकार की सचकित अवस्था में ही सब काम असम्पन्न ... काट रही थी, सहसा एक दबे हुए कण्ठ ...

सुनकर देखा, वा-थिन। उसके सर्वांग में बिजली दौड़ गई; परन्तु पलक मारते ही उसने स्वयं को सम्भाल लिया, वह मुँह फिराकर अन्यत्र चली गई।

थोड़ी देर बाद बूढ़े ने आकर कहा, छोटी बिटिया, जो भी हो, तुम्हारा अतिथि है, एक बात भी क्या नहीं करोगी ?

परन्तु तुम से तो मैंने बुला लाने को नहीं कहा था ?

यही तो मुझ से अपराध हो गया है, कह कर वह लौटा जा रहा था, मा-शोये ने पुकार कर कहा—अच्छा, मुझे छोड़कर और भी तो लोग हैं, वे तो बात कर सकते हैं !

बूढ़ा बोला, वे कर सकते हैं, परन्तु अब आवश्यकता नहीं, वे चले गए हैं।

मा-शोये क्षणभर को स्तब्ध रह गई। तदुपरांत बोली, । भाग्य। नहीं तो तुम भी तो उनसे खाकर जाने की बात कह कते थे !

नहीं, मैं इतना निर्लज्ज नहीं हूँ, कह कर बूढ़ा नाराज़ होकर चला गया।

८

इस अपमान से वा-थिन की आँखों में पानी भर आया। परंतु उसने किसी को भी दोष नहीं दिया, केवल स्वयं को बारम्बार धिक्कारते हुए कहा, यह ठीक ही हुआ। मेरे जैसे निर्लज्ज के लिए यही आवश्यक था।

परन्तु अनावश्यकता तो इसी जगह—इस एक रात के भीतर ही समाप्त नहीं हुई, इसकी अपेक्षा बहुत-बहुत अधिक अपमान जो उसके भाग्य में थे, वे दो दिन बाद बहुत से मिल गए; और ऐसी

वहुतायत से मिले कि उस लज्जा को जीवन भर कहाँ रक्खेगा, इसका कूल-किनारा दिखाई नहीं दिया।

जिस तस्वीर की बात को लेकर यह कहानी आरम्भ हुई थी, जातक का वह गोपा का चित्र इतने दिनों में पूरा हुआ है, एकमास से से अधिक समय के अविश्राम परिश्रम का फल आज शेष हुआ है। सुबह के सारे समय वह इसी आनन्द में मग्न बना रहा।

चित्र राजदरबार में जाएगा, जो दाम देकर ले जाएगा, वह सम्वाद पाकर आ उपस्थित हुआ; परंतु चित्र का आवरण हटाते ही वह चौंक गया। चित्र के सम्बन्ध में वह अनाड़ी नहीं था; वहुत देर तक एकटक देखते रहने के बाद क्षुब्धस्वर में बोला, यह चित्र में राजा को नहीं दे सकूँगा।

वा-थिन ने भय, विस्मय से हतबुद्धि होते हुए कहा, क्यों ?

उसका कारण यह है कि इस मुँह को मैं पहिचानता हूँ। मनुष्य का चेहरा देकर देवता वनाना, देवता का अपमान करना है। यह बात मालूम हो जाने पर राजा मेरा मुँह भी नहीं देखेंगे। यह कह कर वह चित्रकार के विस्फारित व्याकुल नेत्रों की ओर क्षणभर तक देखते रहने के वाद मुँह वना कर हँसता हुआ बोला, थोड़ा-सा ध्यान देकर देखने से ही देख पाओगे—यह कौन है। यह तस्वीर नहीं चलेगी।

वा-थिन की आँखों के ऊपर से धीरे-धीरे एक कुहरे का पर्दा हटता जा रहा था। भद्रपुरुष के चले जाने पर भी वह उसी प्रकार दृष्टि गढ़ाए खड़ा रहा। उसकी आँखों से पानी बहने लगा। अब उसे समझने को वाकी नहीं रहा कि इतने दिनों तक इस प्राणान्त परिश्रम के द्वारा उसने हृदय के अन्तस्थल से जिस सौंदर्य, जिस माधुर्य को खींचकर वाहर निकाला है, देवता के रूप में जो उसे दिन-रात छलता रहा है—वह जातक की गोपा नहीं, वह उसी की मा-शोये है।

आँख बन्द करके मन-ही-मन कहा, भगवान् ! मुझे इस तरह विडम्वित किया—तुम्हारा मैंने क्या किया था !

६

पो-थिन साहस पाकर बोला, तुम्हारी देवता भी कामना करते हैं, मा-शोये, मैं तो मनुष्य हूँ।

मा-शोये ने अन्यमनस्क की भाँति उत्तर दिया, परन्तु जो नहीं करता, वह शायद देवता से भी बड़ा है।

परन्तु, इस प्रसङ्ग को उसने और आगे नहीं बढ़ने दिया; कहा, सुना है, दरबार में आपका बहुत सम्मान है—मेरा एक काम करा सकेंगे ? बहुत जल्दी ?

पो-थिन ने उत्सुक होकर पूछा, क्या ?

एक आदमी से मुझे बहुत रुपए लेने हैं, परन्तु वसूल नहीं कर सकती। कोई लिखा-पढ़ी नहीं है। आप कुछ उपाय कर सकेंगे ?

कर सकूँगा। परन्तु तुम क्या जानती नहीं, यह मैं) राजकर्म-।ऽ कौन है ? कह कर वह हँस गया।

इस हँसी में ही स्पष्ट उत्तर था। मा-शोये व्यग्र होकर उसका हाथ पकड़ती हुई बोली, तब एक दिन में ही उपाय कीजिए। आज ही। मैं और एक दिन का भी विलम्ब नहीं करना चाहती।

पो-थिन ने गर्दन हिला कर कहा, ठीक, यही होगा।

यह ऋण हमेशा से इतना तुच्छ, इतना असम्भव, इतना हास्यास्पद था कि इस सम्बन्ध में किसी ने कभी भी चिन्ता तक नहीं की; परन्तु राजकर्मचारी के मुख की आशा से मा-शोये का समस्त शरीर एक क्षण की उत्तेजना से उत्तप्त हो उठा; वह दोनों आँखें फैला कर सम्पूर्ण इतिहास को बिगाड़ कर कहने लगी, मैं कुछ भी नहीं छोड़ सकती—एक कौड़ी भी नहीं। जोंक जिस तरह रक्त सोख लेती है, ठीक उसी प्रकार। आज ही—अभी नहीं होगा ?

इस सम्बन्ध में उस व्यक्ति से अधिक कहने की आवश्यकता न थी। यह उसकी आशा से भी परे था। वह भीतर के आनन्द और

ह को किसी प्रकार सम्वरण करके बोला, राजा का कानून कम
कम सात दिन का समय चाहता है। इतने समय तक किसी भी
ार धीरज धर कर रहना ही होगा। उसके पश्चात् जो खुशी हो
हे जितनी खुशी से रक्त चूसो, मैं आपत्ति नहीं करूँगा।

यह ठीक है, परन्तु अब आप जाइए। यह कह कर वह जैसे
क प्रकार से छूट भागी।

इस दुर्बोध्य लड़की के प्रति उस मनुष्य के लोभ की सीमा नहीं
थी। तभी अनेकों अवहेलनाओं को वह चुपचाप पचा जाता था, आज
भी पचा गया। अपितु घर लौटने के मार्ग पर उसका पुलकित चित्त
पुनः-पुनः इस बात को अपने आपसे कहने लगा, अब कोई भय नहीं
है—उसकी सफलता का मार्ग निस्कण्टक होने में अब शायद अधिक
विलम्ब न होगा। यह बात सत्य है, परन्तु कितना शीघ्र और कितना
बड़ा विस्मय भगवान ने उसके भाग्य में लिख रक्खा था, यह आज
कल्पना करने पर भी उसके लिए संभव नहीं हुआ।

१०

ऋण के दावे का सम्मन आया। कागजों को हाथ में लेकर
वा-थिन बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा। ठीक इसी बात की तो उसे
आशा नहीं थी, परन्तु आश्चर्य भी नहीं हुआ। समय थोड़ा है, शीघ्र
ही कुछ करना चाहिए।

एक दिन कभी मा-शोये ने क्रुद्ध होकर, उसके पिता के अपमान
के प्रति विद्रोह किया था, उसका यह अपराध उसे भूलता नहीं, क्ष
भी नहीं करता। तभी वह समय की भिक्षा माँग कर उनका
अपमान कराने की कल्पना भी नहीं कर सका। केवल चिन्ता
थी कि उसका जो कुछ है, सबको देकर भी पिता को ऋण-मुक्त
जा सकेगा या नहीं। गाँव में ही एक व्यक्ति धनी महाजन
दूसरे ही दिन सबेरे उसने उसके पास जाकर — कुछ बेच दे

प्रस्ताव किया। देखा गया, वह जो देना चाहता है, वही बहुत है। रुपए इकट्ठे कर वह घर ले आया, परन्तु एक व्यक्ति की अकारण हृदयहीनता ने उसकी सम्पूर्ण देह और मन के ऊपर अज्ञात भाव से कितना बड़ा आघात पहुँचाया है, इसे वह तब जान पाया, जब ज्वर में गिर पड़ा।

किस तरह दिन-रात कट गए, उसका ख्याल ही न रहा। ज्ञान होने पर उठकर बैठते हुए देखा, वह दिन ही उसकी अवधि का अन्तिम दिन है।

आज अन्तिम दिन है। अपने सूने कक्ष में बैठी हुई मा-शोये कल्पना का जाल बुन रही थी। उसके स्वयं के अहंकार ने प्रतिक्षण चोट खा-खाकर एक दूसरे व्यक्ति के अहङ्कार को अभ्रभेदी उच्च बना कर खड़ा कर दिया था। वही विराट् अहङ्कार आज उसके पाँवों पर गिर कर मिट्टी में मिल जाएगा, इसमें उसे लेशमात्र सन्देह नहीं था।

इसी समय नौकर ने आकर बताया, नीचे वा-थिन प्रतीक्षा कर रहे हैं। मा-शोये मन-ही-मन क्रूर हँसी हँसती हुई बोली, जानती हूँ। वह स्वयं भी इसी की प्रतीक्षा कर रही थी।

मा-शोये के नीचे आते ही वा-थिन उठकर खड़ा होगया, परन्तु उसके मुँह की ओर देखते ही मा-शोये की छाती में शूल चुभ गया। रुपए वह नहीं चाहती, रुपए के प्रति लोभ उसका कानी कौड़ी के बराबर भी नहीं है, परन्तु उसी रुपए का नाम लेकर कितना भयङ्कर अत्याचार किया जा सकता है, इसे उसने आज ही देखा। वा-थिन ने पहले ही बात की, बोला, आज सात दिन का अन्तिम दिन है, तुम्हारे रुपए लाया हूँ।

हाय रे, मनुष्य मरने को बैठा होने पर भी घमण्ड नहीं छोड़ना चाहता! अन्यथा प्रत्युत्तर में मा-शोये अपने मुँह से किस प्रकार ऐसी बात बाहर निकल पाती कि मैं कुछ थोड़े से रुपए नहीं चाहती-ऋण के सम्पूर्ण रुपए चुकाने के लिए कहा है।

वा-थिन का पीड़ित, शुष्क-मुख हँसी से भर गया, बोला, वही है, तुम्हारे सभी रुपए लाया हूँ।

सब रुपए ? कहाँ से पाए ?

कल ही जान जाओगी। इस बक्स में रुपए है, किसी को भी गिन लेने के लिए कहो।

गाड़ीवान ने दरवाजे से उसे लक्ष्य करते हुए पूछा, और कितनी देर लगेगी ? समय रहते बाहर नहीं निकल सके तो पेंगू में रात को ठहरने की जगह नहीं मिलेगी !

मा-शोये ने गर्दन बढ़ा कर देखा, रास्ते पर बक्स, बिछौना आदि बोझ रक्खे हुए गाड़ीवान खड़ा है। भय से निमिषभर में उसका समस्त मुख विवर्ण हो उठा, व्याकुल होकर एकबार में सहस्रों प्रश्न करने लगी, पेंगू कौन जाएगा ? गाड़ी किसकी है ? कहाँ से इतने रुपए मिले ? चुप क्यों हो ? तुम्हारी आँखें इतनी किसलिए सूख गई हैं ? कल क्या जानूँगी ? आज कहते हुए तुम्हारा...

कहते-कहते उसने आत्मविस्मृत हो पास आकर उसका हाथ पकड़ लिया—एवं क्षणभर में हाथ छोड़ कर उसके ललाट का स्पर्श करती हुई चौंक पड़ी—ओफ़्—यह तो बुखार है, तभी तो कहती हूँ, मुँह इतना फ़ीका क्यों है ?

वा-थिन ने अपने को मुक्त करते हुए शान्त मृदुकण्ठ से कहा, बैठो। कह कर वह स्वयं ही बैठ गया, बोला, मैं मण्डाले जा रहा हूँ। आज तुम मेरा एक अन्तिम अनुरोध सुनोगी ?

मा-शोये ने गर्दन हिला कर जताया, वह सुनेगी। वा-थिन तनिक स्थिर होकर बोला, मेरा अन्तिम अनुरोध है, सुपात्र देखकर किसी के साथ शीघ्र विवाह कर लेना इस तरह अविवाहित दशा में और अधिक दिन मत रहना। एक और भी बात...

—ह कह कर वह फिर कुछ देर के लिए चुप ... —

एकादशी वैरागी

कालीदह गाँव ब्राह्मण-प्रधान स्थान है। यहाँ के गोपाल मुखर्जी का लड़का अपूर्व लड़कपन से ही लड़कों का सरदार था। इस बार जब वह पाँच-छः वर्ष तक कलकत्ते के मेस में रहकर ऑनर सहित बी० ए० पास करके घर लौट कर आया, तब गाँव में उसके प्रभाव-प्रतिष्ठा की कोई सीमा न रही। गाँव में एक जीर्ण-शीर्ण हाईस्कूल था—उसके समवयस्क इस बीच इसी में पढ़ाई समाप्त करके, सन्ध्या-पूजा छोड़ कर दस आना-छः आना बाल छँटवा बैठे थे; परन्तु कलकत्ते से लौटा हुआ इस ग्रेजुएट लड़के के मस्तक के बाल एक समान और उनके ठीक बीच एक मोटी-सी चोटी की स्थापना देखकर केवल छोकरे ही क्यों, उनके बाबा तक आश्चर्य से दंग रह गए! शहर की सभा-समितियों में योग देकर, ज्ञानी लोगों की वक्तृता सुनकर, अपूर्व, सनातन हिन्दुओं के अनेक निगूढ़ रहस्यों का मर्मोद्भेद करके देश पहुँचा था। अब वह अपने साथियों के बीच इसी बात का मुक्त कण्ठ से प्रचार करने लगा कि इस हिन्दूधर्म के समान सनातन धर्म और नहीं है। कारण इसकी

प्रत्येक व्यवस्था विज्ञान सम्मत है। चोटी की वैद्युतिक-उपयोगिता शरीर रक्षा के सम्बन्ध में सन्ध्याह्निक की परम उपकारिता, कच्चे केले खाने की रासायनिक प्रतिक्रिया इत्यादि बहुविधि अपरिक्षात तत्त्वों की व्याख्या सुनकर गाँव के बच्चे-बूढ़े तक मुग्ध हो गए एवं उसका यह फल हुआ कि थोड़े से समय में ही लड़कों ने चोटी से आरम्भ कर सन्ध्याह्निक, एकादशी, पूर्णिमा और गंगा-स्नान तक की धूम से घर की स्त्रियाँ भी हार मान गईं। हिन्दूधर्म के पुनरुद्धार, देशोद्धार इत्यादि जल्पना-कल्पना से युवकों में एकदम शोर मच गया। बड़े-बूढ़े कहने लगे, हाँ, गोपाल मुखर्जी का भाग्य अच्छा है! माँ लक्ष्मी की भी जैसी सुदृष्टि है, सन्तान भी वैसी ही पैदा हुई है। अन्यथा आजकल के समय में इतनी अँग्रेजी पास करके भी इस आयु में ऐसी धर्म में मति-गति कितनों में दिखाई देती है! अस्तु, गाँव में अपूर्व एक अपूर्व वस्तु हो उठा। उसकी हिन्दूधर्म प्रचारिणी, धूम्रपान-निवारणी और दुर्नीति-दलनी—इन तीन-तीन सभाओं की उछलकूद से गाँव के किसान-मजदूरों का दल तक घबरा उठा। पाँचकौड़ी तेवर ने ताड़ी पीकर अपनी स्त्री को मारा है, सुनते ही अपूर्व ने सदल-बल उपस्थित होकर पाँचकौड़ी को इस प्रकार डराया-धमकाया कि दूसरे ही दिन पाँचकौड़ी की स्त्री पति को लेकर अपने मायके भाग गई। भगा कावरा बहुत रात बीते, बम्बे से मछली पकड़कर घर लौटते समय रास्ते में शायद गाँजे की झौंक में 'विद्यासुन्दर' नाटक की मालिनी का गाना गाता चला जा रहा था, ब्राह्मण पाँड़े के अवि-नाश के कान में वह पड़ा तो उसने उसकी नाक से खून निकाल कर ही छोड़ा। दुर्गा डोम का चौदह-पन्द्रह वर्ष का लड़का बीड़ी पीता हुआ मैदान से जा रहा था; अपूर्व के दल के लड़के की दृष्टि में पड़ते ही उसने उसकी पीठ पर वही जलती हुई बीड़ी चिपका कर फफोला उठा दिया। इस प्रकार अपूर्व की हिन्दूधर्म-प्रचारिणी और दुर्नीति दलनी सभा ने भानुमती के आम के पेड़ की भाँति झटपट फूल-फल कर कालीदह गाँव को एकदम आच्छन्न कर फेंका। इस बार गाँव की

मानसिक उन्नति की ओर दृष्टि डालने पर अपूर्व ने देखा कि स्कूल का लाइब्रेरी में शशिभूषण के डेढ़ मानचित्र और बंकिम के ढाई उपन्यास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस दरिद्रता के लिए उसने हैड-मास्टर को अशेष रूप से लाञ्छितकर अन्त में स्वयं ही लाइब्रेरी संगठन कार्य में कमर बाँध कर लग गया। उसके सभापतित्व में चन्दे की सूची, नियम-कानूनों की तालिका एवं पुस्तकों की लिस्ट तैयार होने में विलम्ब नहीं हुआ। इतने दिनों तक लड़कों के धर्म-प्रचार के उत्साह को गाँव के लोगों ने किसी प्रकार सह लिया था; परन्तु दो-एक दिन में ही उनका चन्दा वसूल करने का उत्साह गाँव के अन्य भद्र-गृहस्थों के लिए ऐसा भयावह हो उठा कि लिस्ट को बगल में दबाए हुए लड़के को देखते ही वे सब मकान के दरवाजे—खिड़की बंद करने लगते। स्पष्ट दिखाई दिया, गाँव में धर्म-प्रचार, दुर्नीति-दलन का रास्ता जितना चौड़ा पाया-गया था, लाइब्रेरी के लिए अर्थ-संचय का मार्ग उसका शतांश का एकांश भी प्रशस्त नहीं हुआ। अपूर्व 'क्या करे' सोच रहा था, इसी बीच अचानक एक बड़ा सुगम मार्ग उसे दिखाई दिया। स्कूल के समीप ही एक परित्यक्त खण्डहर की ओर एक दिन अपूर्व की दृष्टि आकर्षित हुई। सुना गया, यह 'एकादशी वैरागी' का मकान है। खोज करने पर पता चला, उस व्यक्ति द्वारा कोई गर्हित सामाजिक अपराध किए जाने पर गाँव के ब्राह्मणों ने उसके धोबी, नाई, मोदी आदि बंद करके दसेक वर्ष पहले घर छुड़वा कर निर्वासित कर दिया था। इस समय वह दो कोस उत्तर की ओर वारुईपुर गाँव में रहता है। वह व्यक्ति सुनते हैं 'रुपयों का घड़ियाल' है; परन्तु उसका वास्तविक नाम क्या है इसे कोई नहीं कह सकता—भंडाभोड़ हो जाने के भय से बहुत दिनों से अव्यवहृत मनुष्य की स्मृति से वह एकदम लुप्त हो गया है। तभी से इस एकादशी नाम से ही वैरागी महाशय सुप्रसिद्ध हैं। अपूर्व ने ताल ठोक कर कहा, रुपयों का घड़ियाल! सामाजिक सदाचार! तब तो यही बेटा लाइब्रेरी का आधा भार वहन करने के लिए वाध्य है। अन्यथा

वहाँ के भी धोबी, नाई, मोदी सब बन्द। बारुईपुर के ज़मींदार तो दीदी के ममियाससुर हैं।

लड़के उन्मत्त हो उठे एवं अविलम्ब डोनेशन (दान) के खाते में वैरागी के नाम के पीछे एक बहुत बड़ा अंक लिख दिया। एकादशी से रुपये वसूल करने होंगे, न होने पर अपूर्व अपनी दीदी के ममिया-ससुर से कह कर बारुईपुर में भी धोबी, नाई बन्द कर देगा, समाचार पाकर रसिक स्मृतिरत्न, लाइब्रेरी के मंगलार्थ उपयाचक बनकर परामर्श दे गए कि ठीक एक मोटी रकम न देने पर महापापी बेटा कालीदह के मकान की रक्षा कैसे करेगा, देख लेंगे। कारण वास न करने पर भी इस खण्डहर के ऊपर एकादशी की जो अत्यन्त ममता है, स्मृतिरत्न से वह छिपी नहीं है। क्योंकि दो वर्ष पूर्व इस ज़मीन को खरीद कर अपने बगीचे में मिला लेने के अभिप्राय से अधिक चेष्टा करने पर भी वे सफल मनोरथ नहीं हो सके थे। उनके प्रस्ताव के समय एकादशी ने अत्यन्त साधु पुरुष की भाँति कानों में उँगली देकर कहा था, ऐसी आज्ञा मत दीजिए ठाकुरमहाशय, इस एक छोटी-सी ज़मीन के बदले ब्राह्मण से मूल्य लेना मुझसे किसी प्रकार नहीं हो सकेगा। वह ब्राह्मण की सेवा में लगे, इसी में मेरे साथ पुरखों का सौभाग्य है। स्मृतिरत्न द्वारा निरतिशय पुलकित हृदय से उसकी देव-द्विजों पर भक्ति-श्रद्धा की लाख-करोड़ प्रशंसा करने एवं असंख्य आशी-र्वाद दिए जाने के पश्चात्, एकादशी ने हाथ जोड़ कर सविनय निवेदन किया था, परन्तु मैं ऐसा अभागा हूँ पण्डित जी, कि सात पीढ़ी के मकान को मैं किसी भी प्रकार छोड़ने में समर्थ नहीं हूँ। पिताजी मरते समय अपने मस्तक की शपथ खिलाते हुए कह गए हैं, यदि खाने के लिए भी न मिले बेटा, तो भी अपना मकान कभी मत छोड़ना इत्यादि इत्यादि। वह क्रोध स्मृतिरत्न को भूलता नहीं।

मकान कच्चा था, परन्तु साफ-सुथरा। देखकर लगता, लक्ष्मी-श्री है! अपूर्व अथवा उसके दल के अन्य किसी ने एकादशी को पहले कभी देखा नहीं था; अस्तु चण्डीमण्डप में पाँव रखते ही उसका मन अरुचि से भर गया। यह व्यक्ति रुपयों का घड़ियाल हो, मगर हो, लाइब्रेरी के लिए यह छोटी मछली जितना भी काम नहीं आएगा, यह निश्चित है! एकादशी का पेशा व्यापार है। आयु साठ के ऊपर जा चुकी है। सारी देह जैसी दुर्बल है, वैसी ही शुष्क भी। कण्ठ तुलसी की मालाओं से भरा हुआ है। दाढ़ी-मूँछ साफ है, मुँह की ओर देख कर यह नहीं लगता है कि इसमें कहीं भी रस-कस है। ईख जिस प्रकार अपने रस को कोल्हू के दवाब से बाहर करके, अन्त में स्वयं ही ईंधन होकर उसे जलाकर सुखा देती है, यह व्यक्ति भी मनुष्य को जलाकर सुखा जाने के लिए ही अपनी सम्पूर्ण मनुष्यता को विसर्जित कर महाजन बनकर बैठा हुआ है। उसका केवल चेहरा देखते ही अपूर्व मन-ही-मन ठंडा हो गया। चण्डीमण्डप के ऊपर साधारण-सा फर्श है। बीच में एकादशी विराजमान है। उसके सामने एक लकड़ी का हाथ-बक्स है एवं एक ओर ढेर लगे हुए हिसाब के बही-खाते हैं। एक बूढ़ा-सा गुमाश्ता नंगे बदन पर जनेऊ को गले में लटकाए हुए स्लेट के ऊपर ब्याज का हिसाब लगा रहा है एवं सामने बगल में, बरामदे के खंभों की आड़ में विभिन्न आयु और विभिन्न अवस्था के स्त्री-पुरुष म्लान मुख से बैठे हुए हैं। कोई ऋण ले रहा है, कोई ब्याज दे रहा है, कोई केवल मुद्दत बढ़ाने की भीख माँगने आया है, परन्तु ऋण चुकाने के लिए कोई बैठा हो, ऐसा किसी का मुँह देखकर भी नहीं जान पड़ता।

अचानक अनेकों अपरिचित भद्र-बालकों को देख कर एकादशी ने आश्चर्य चकित होकर निहारा। गुमाश्ते ने स्लेट को रखते हुए कहा, कहाँ से आ रहे हैं?

अपूर्व ने कहा, कालीदह से।

महाशय आपलोग?

हम सभी ब्राह्मण हैं।

ब्राह्मण सुनते ही एकादशी ने चौंक कर उठ खड़े हो गर्दन झुका कर प्रणाम की, कहा, बैठने की आज्ञा दो।

सबको बैठा कर एकादशी स्वयं भी बैठा। गुमाश्ते ने प्रश्न किया, आप लोगों का क्या प्रयोजन है ?

अपूर्व ने लाइब्रेरी की उपकारिता के सम्बन्ध में एक साधारण भूमिका बाँध कर चन्दे की बात छेड़ते हुए देखा, एकादशी की गर्दन दूसरी ओर मुड़ गई है। वह खम्भे की आड़ में बैठी स्त्री को सम्बोधन करके कह रहा है, तुम क्या पागल हो गई हो हारू की माँ ? ब्याज तो हुई कुल सात रुपया दो आना; उसमें से दो आना यदि छुड़वा लोगी, तो इसकी अपेक्षा मेरे गले पर पाँव रखकर, जीभ बाहर निकाल कर मार क्यों नहीं डालतीं ?

इसके पश्चात् दोनों ने ऐसी खींचतान शुरू कर दी, जैसे इन दो आने पैसों के ऊपर ही उनका जीवन निर्भर करता है; परन्तु हारू की माँ जैसी स्थिर संकल्प थी, एकादशी भी वैसा ही अटल था। देर होती हुई देखकर अपूर्व दोनों की वाक्‌वितण्ड के बीच में ही बोल उठा, हमारी लाइब्रेरी की बात...

एकादशी मुँह फिराकर बोल उठा, आज्ञा, अभी सुनता हूँ;—हाँ रे नफर, तू क्या मुझे माथे पर पाँव रखकर डुबाना चाहता है रे ! वे दो रुपए तो अभी तक चुकाए नहीं, फिर एक रुपया माँगने के लिए किस मुँह से चला आया, सुनूँ तो ? कहता हूँ, सूद-ऊद भी कुछ लाया है ?

नफर के अंटी खोलकर एक आना पैसा बाहर करते ही एकादशी ने आँखें लाल करते हुए कहा, तीन महीने हो गए हैं न रे ! और दो पैसे कहाँ हैं ?

नफर हाथ जोड़कर बोला, और नहीं हैं; मालिक घाड़ा के लड़के से न जाने कितने हाथ-पाँव जोड़कर चार पैसे उधार लाया हूँ,

बाकी दो पैसे अगली हाट के दिन ही दे जाऊँगा ।

एकादशी ने गर्दन बढ़ाकर देखते हुए कहा, देखूँ तेरी उस ओर की अन्टी ?

नफर ने बाँई ओर की अन्टी दिखाते हुए अभिमान से कहा, दो पैसे के लिए भूँठी बात कहूँगा मालिक ? जो साला पैसे लाकर भी आपको धोखा दे उसके मुँह में कीड़े पड़ें, यह कहे देता हूँ ।

एकादशी ने तीक्ष्णदृष्टि से देखते हुए कहा, तू चार पैसा उधार ले आ सका, और दो भी इसी तरह उधार नहीं ला सका ?

नफर नाराज़ होकर बोला, मेरा भरोसा नहीं करते मालिक ? मुँह में कीड़े पड़ें...

अपूर्व का शरीर जला जा रहा था, वह और न सह सकने के कारण बोल उठा, अच्छे लोग हैं आप महाशय !

एकादशी ने एकबार केवल देख लिया, कोई बात नहीं कही । परान बाग्दी सामने आँगन में से जा रहा था; एकादशी ने हाथ हिलाकर बुलाते हुए कहा, परान, नफर की काँछ एकबार खोलकर देख तो रे, दो पैसे बंधे हैं या नहीं ?

परान के आगे बढ़ते ही नफर से नाराज़ होकर अपनी कांछ की छोर में बंधे दो पैसे खोलकर एकादशी के सामने फेंक दिए । एकादशी इस बेअदबी पर तनिक भी नाराज़ नहीं हुआ । गंभीर मुख से छै पैसों को बक्स खोलकर रखते हुए गुमाश्ते से बोला, घोषाल महाशय, नफर के नाम ब्याज की वसूली में जमाकर लीजिए । हाँ रे, एक रुपए का फिर क्या करेगा रे ?

नफर ने कहा, आवश्यकता न होने पर थोड़े ही आया हूँ महाशय ?

एकादशी ने कहा, आन आना ले जा न ! पूरा रुपया ले जाकर तो इधर-उधर कर फेंकेगा रे ।

उसके बाद खूब घिसघिसा कर नफर चौधरी ने बारह आने का
ां लिया।

देर बहुत हो रही थी। अपूर्व के साथी अनाथ ने चन्दे की
लस्ट एकादशी के सामने फेंकते हुए कहा, जो दें, दे दें महाशय; हम
लोग और देर नहीं कर सकते।

एकादशी लिस्ट को उठाकर प्राय: पन्द्रह मिनट तक लिए हुए
प्रारम्भ से अन्त तक खूब गौर से देखने के पश्चात् एक नि:श्वास छोड़
लिस्ट को लौटाता हुआ बोला, मैं बूढ़ा आदमी हूँ, फिर मुझसे चन्दा
किस लिए ?

अपूर्व ने किसी प्रकार क्रोध को दबाते हुए कहा, बूढ़े आदमी
रुपया नहीं देंगे तो क्या छोटे बच्चे रुपया देंगे ? वे पाएँगे कहाँ से
सुनूँ तो ?

बूढ़े ने इस बात का उत्तर न देते हुए कहा, स्कूल को तो हो
गए बीस-पच्चीस वर्ष; क्यों, इतने दिनों तक तो किसी ने लाइब्रेरी की
बात नहीं उठाई बाबा ? खैर, यह कोई बुरा काम नहीं है, हमारे
लड़के-बच्चे चाहे किताब पढ़ें, मेरे गाँव के लड़के तो पढ़ेंगे ! क्या
कहते हो घोषाल महाशय ? घोषाल ने गर्दन हिलाकर क्या कहा
समझा नहीं जा सका। एकादशी ने कहा। तो ठीक है, मैं चन्
दूंगा, किसी दिन आकर ले जाना चार आने पैसे। क्या कहते
घोषाल, इससे कम और अच्छा नहीं मालूम होता। इतनी दूर
लड़कों ने आ घेरा है, जो भी हो थोड़ा सा नाम फैला हुआ है त
तो ? और भी तो लोग हैं, उनके पास तो कोई माँगने जाता न
क्या कहते हो जी ?

क्रोध के मारे अपूर्व के मुंह से बात नहीं निकली। अना
कहा, इस चार आने के लिए हम लोग इतनी दूर आये हैं ?
लिए भी फिर किसी दिन आकर ले जाना होगा ? एकादशी मु

एक शब्द निकाल कर सिर हिलाते-हिलाते कहने लगा, देख तो ली आपने हालत, छै पैसा हक की व्याज वसूल करने में सालों से कैसा ओछापन नहीं करना पड़ता। तभी, इस पाट के न बिक जाने तक चन्दा देने की सुविधा...

अपूर्व के ओठ क्रोध से काँपने लगे; बोला, सुविधा होगी तब जब यहाँ भी धोबी-नाई बन्द हो जाएँगे। साले पिशाच सम्पूर्ण शरीर में चन्दन-वन्दन लगाकर जात खोकर बैरागी बना बैठा है, अच्छा!

विपिन ने उठकर खड़े होते हुए एक उँगली उठाकर धमकाते हुए कहा, बारुईपुर के राखालदास बाबू हमारे कुटुम्बी हैं, मन में रख लेना बैरागी।

बूढ़ा बैरागी इस अप्रत्याशित काण्ड को हतबुद्धि होकर देखता रहा। विदेशी लड़कों के अचानक इस क्रोध का कारण वह किसी भी प्रकार नहीं समझ सका। अपूर्व बोला, गरीबों का रक्त चूसकर सूद खाना तुम्हारा निकालेंगे, तभी छोड़ेंगे।

नफर तब भी बैठा था; अपनी काँछ में बँधे हुए दो पैसे अदा करने का क्रोध से मन-ही-मन फूल रहा था; उसने कहा, जो कहा है मालिक वह ठीक है। बैरागी नहीं पिशाच है! आँखों से देखा तो है कि किस तरह मुझसे दो पैसे वसूल कर लिए!

बूढ़े के फटकारने से, उपस्थित सभी लोग मन-ही-मन निर्मल आनन्द का उपभोग करने लगे। उन लोगों के मुँह के भाव देखकर विपिन उत्साहित हो आँख मिचकाता हुआ बोल उठा, तुमलोग तो भीतरी बातें जानते नहीं, परन्तु यह हमलोगों के गाँव का आदमी है, हम लोग सब जानते हैं। क्यों रे बुड्ढे, हमारे गाँव में क्यों तेरे धोबी, नाई बन्द होगए, बताएगा?

खबर पुरानी थी। सभी जानते थे। एकादशी सद्गोपों (एक
जाति विशेष का नाम) का लड़का है, जाति वैष्णव नहीं है। उसकी
एकमात्र सौतेली-बहिन लोभ में पड़कर कुल के बाहर चली गई, एका-
दशी बहुत दुःख उठाकर बड़ी खोज करके उसे घर लौटा लाया;
परन्तु इसी कदाचार से गाँव के लोग विस्मित और अत्यन्त क्रुद्ध हो
उठे। तो भी एकादशी माता-पिता से हीन इस सौतेली छोटी बहिन
को किसी प्रकार त्याग नहीं सका। संसार में उसका और कोई नहीं
था; इसी को उसने बचपन से गोद-पीठ पर बैठा कर बड़ा किया था,
उसका ठाठ के साथ विवाह कर दिया; फिर वह अल्पायु में ही विधवा
हो गई, भाई के घर में ही वह आदरपूर्वक लौट आई। आयु एवं बुद्धि
के दोष से उस बहिन के इतने बड़े पद-स्खलन से वृद्ध ने रोते-रोते घर
भर दिया। आहार-निद्रा त्याग कर गाँव-गाँव शहर-शहर में घूमता
हुआ अन्त में उसे ढूँढ़ कर घर लौटा लाया, उस समय गाँव के लोगों
का निष्ठुर अनुशासन मस्तक पर धारण कर, अपनी इस लज्जिता
एकान्त अनुतप्ता, दुर्भागिनी बहिन को फिर घर से निकाल कर जाति
में सम्मिलित होने को एकादशी किसी प्रकार राजी नहीं हो सका।
इसके पश्चात् गाँव में उसके धोबी, नाई, मोदी आदि बन्द हो गए
एकादशी निरुपाय हो, भेष लेकर वैष्णव बन इस बारुईपुर में भ
आया। इस बात को सभी जानते हैं: तो भी किसी अन्य व्यक्ति के
से किसी अन्य व्यक्ति के कलङ्क की कहानी के माधुर्य का उपभोग क
के लिए सभी ने अपनी गर्दन ऊपर उठाली; परन्तु एकादशी लज्ज
भय से एकदम जड़वत् हो गया। अपने स्वयं के लिए नहीं, छोटी ब
के लिए। प्रारम्भिक यौवन के अपराध ने गौरी की छाती में जिस
घाव को जन्म दिया था, आज भी वह जैसे वैसा ही है, आधे ति
बराबर भी सूखा नहीं है, वृद्ध इसे अच्छी तरह जानता है। पीछे
मात्र इङ्गित भी उसके कान में चले जाने पर वही कथा अलो
उठेगी, इस आशंका से एकादशी विवर्णमुख से चुपचाप देखता
उसकी इस सकरुण दृष्टि की नीरव प्रार्थना किसी को दिखा

परन्तु अपूर्व अचानक अनुभव करके अचरज से अवाक् रह गया।

विपिन कहने लगा, हम लोग क्या भिखारी हैं जो दो कोस मार्ग चल कर इस धूप में चार आने पैसे की भिक्षा माँगने आए हैं ! वह भी फिर आज नहीं, न जाने कब किस आसामी का पाट बिकेगा, उस खबर को पाकर हमें फिर किसी दिन दौड़ना पड़ेगा। तब कहीं यदि बाबू साहब की दया हो जाय, परन्तु लोगों का रक्त चूस कर जो सूद खाते हो बुड्ढे, सोचते होगे जौंक के शरीर पर जौंक नहीं बैठती ? मैं यहाँ भी तुम्हारा हाल-बेहाल न कर दूँ तो मेरा नाम विपिन भट्टाचार्य नहीं ! छोटी जाति के पास पैसा हो गया है, तभी शायद आँख-कान से दिखाई-सुनाई नहीं देता ? चलो जी अपूर्व, हम लोग चलें, इसके बाद जो समझेंगे सो किया जाएगा। कह कर वह अपूर्व का हाथ पकड़ कर खींचने लगा।

लगभग ग्यारह बज चुके थे। विशेष कर इतना रास्ता पैदल चलकर आने से अपूर्व को बड़ी प्यास लग रही थी, कुछ देर पहले ही उसने नौकर से पानी लाने के लिए कह दिया था। तदुपरान्त कलह-विवाद में वह बात याद न रही; परन्तु उसकी तृष्णा का पानी एक हाथ में एवं दूसरे हाथ की रकाबी में थोड़े से बताशे लिए हुए एक सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष की विधवा स्त्री को पास का दरवाजा खोलकर भीतर प्रवेश करते हुए देखकर उसे पानी मँगाने की बात याद हो आई। गौरी को नीच जाति की स्त्री कहने की बिल्कुल इच्छा नहीं होती। श्वेत पट्ट वस्त्र पहिने, स्नान के पश्चात् शायद तुरन्त ही आह्निक करने बैठी थी, ब्राह्मण जल मँगा रहे हैं, नौकर से यह सुनकर वह आह्निक छोड़कर दौड़ी आई है। कहा, आप लोगों में से किसी ने पानी माँगा था ?

विपिन ने कहा, पाट की साड़ी पहिन लेने से ही शायद तुम्हारे हाथ का पानी हम लोग पी लेंगे ? अपूर्व, यही वे विद्याधरी है !

पलक मारते ही स्त्री के हाथ से बताशों की रकाबी झनझनाती हुई नीचे गिर पड़ी एवं उस असीम लज्जा को आँखों से देखकर अपूर्व

स्वयं भी लज्जा से मर गया। क्रोध से विपिन का एक कुहना मारते हुए कहा, यह सब क्या बन्दरपन करते हो? तनिक भी शऊर नहीं है?

विपिन देहाती आदमी है, कलह के समय मुँह पर अपमान करते हुए नर-नारी के भेदा-भेद ज्ञान से रहित निरपेक्ष वीरपुरुष। वह अपूर्व की कुहनी खाकर और भी निष्ठुर हो उठा। आँखें लालकर ललकारते हुए बोला, क्यों, झूँठ बात कह रहा हूँ क्या? इसका इतना बड़ा साहस कि ब्राह्मणों के लड़कों के लिए पानी लाए? मैं बीच बाजार में भण्डाफोड़ कर सकता हूँ, जानते हो?

अपूर्व समझ गया, अब तर्क नहीं चलेगा। अपमान की मात्रा उससे बढ़े भले ही, कम नहीं होगी। कहा, मैंने लाने के लिए कहा था विपिन, तुम बिना जाने निरर्थक झगड़ा मत करो; अब हम-लोग चल दें।

गौरी रकावी को उठाकर किसी की ओर देखे बिना चुपचाप दरवाजे की ओट में जाकर खड़ी हो गई। वहीं से बोली, दादा, ये लोग किसी का चन्दा लेने आए थे, तुमने दिया है?

एकादशी अबतक विह्वल की भाँति बैठा था, बहिन का आह्वान सुन कर चकित होता हुआ बोला, नहीं, अभी देता हूँ दीदी!

अपूर्व की ओर देख कर हाथ जोड़ते हुए कहा, बाबूजी, मैं गरीब मनुष्य हूँ! चार आना ही मेरे लिए बहुत हैं, दया करके ले लीजिए।

विपिन दुबारा कोई कड़ा जवाब देने को उद्यत हुआ, अपूर्व ने इशारे से उसे मना किया, परन्तु इतने काण्ड के बाद भी वही चार आने के प्रस्ताव से उसे स्वयं भी अत्यन्त घृणा अनुभव हुई। आत्मसम्वरण करते हुए कहा, रहने दो वैरागी, तुम्हें कुछ नहीं देना पड़ेगा।

एकादशी समझ गया, यह नाराजी की वात है; एक निःश्वास छोड़कर बोला, कलिकाल ! सुविधा पाने पर क्या कोई भी किसी की गरदन मरोड़े बिना छोड़ता है ? दो घोषाल महाशय, पाँच आने पैसे खर्च-खाते में लिख दो। और क्या करोगे बोलो। कह कर वैरागी ने दुबारा एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी। उसका मुँह देखकर अपूर्व इस बार हँस गया। इस कुसीदजी की (व्याजखाऊ) वृद्ध के लिए चार आने में एव पाँच आने में कितना बड़ा अन्तर है, इसे उसने मन-ही-मन समझा, कोमलता से हँसते हुए कहा, रहने दो वैरागी, तुम्हें नहीं देना होगा। हमलोग चार-पाँच आने पैसे का चन्दा नहीं लेते ! हम लोग जा रहे हैं।

क्या जाने क्यों, अपूर्व को बड़ी आशा थी, इस पाँच आने के विरोध में दरवाजे के भीतर से अन्ततः एक प्रतिवाद आएगा। उसके आँचल का छोर उस समय भी दिखाई दे रहा था, परन्तु उसने कोई वात नहीं कहीं। जाने से पूर्व अपूर्व ने सचमुच ही क्षोभ के साथ मन ही-मन में कहा, ये लोग सममुच ही अत्यन्त क्षुद्र हैं। दान करने के सम्बन्ध में पाँच आने पैसे से अधिक इनकी सामर्थ्य नहीं है। पैसा ही इन लोगों का प्राण, पैसा ही इनका अस्थि-माँस है, पैसे के लिए ये न कर सकें, ऐसा कार्य संसार में कोई नहीं है।

अपूर्व सदलबल उठकर खड़ा हो गया, एक दसेक वर्ष के बालक पर अनाथ की दृष्टि पड़ी। बालक के गले में उत्तरीय* बँधा हुआ था। शायद पिता की मृत्यु अथवा ऐसी ही कुछ घटना घटी होगी। उसकी विधवा माता बरामदे के खम्भे की आड़ में बैठी थी। अनाथ आश्चर्य चकित होकर पूछ बैठा, बेटे, तू यहाँ कैसे ?

लड़के ने उङ्गली से दिखाते हुए कहा, मेरी माँ बैठी है। माँ बोली, हमारे बहुत से रुपए उसके पास जमा हैं। कह कर उसने

---

* एक कपड़े का टुकड़ा, जिसे किसी बड़े-बूढ़े के मर जाने पर, श्राद्ध होने तक गले में बाँधने की बंगाल में प्रथा है।

एकादशी को दिखा दिया। बात सुनकर सभी चकित और कौतूहल
ही उठे। इस दृश्य को अन्त तक खड़े होकर देखने के लिए अपूर्व
स्वयं अत्यन्त प्यासा होने पर भी विपिन का हाथ पकड़ कर बैठ
गया।

एकादशी ने पूछा, तुम्हारा नाम क्या है बच्चे? तुम्हारा घर
कहाँ है?

लड़के ने कहा, मेरा नाम शशधर है; मकान उसी के गाँव-
कालीदह में हैं।

तुम्हारे पिता का क्या नाम है?

लड़के की ओर से इस बार अनाथ ने उत्तर दिया। कहा,
इसका पिता बहुत दिन पहले मर गया है! बाबा रामलोचन चटर्जी
लड़के की मृत्यु के बाद गृहस्थी छोड़कर बाहर चले गए थे, सात वर्ष
बाद महीने भर के लिए लौट आए थे। परन्तु इन लोगों के घर में
आग लग गई, आग बुझाते समय बूढ़ा मर गया। और कोई नहीं है
यह नाती ही श्राद्ध का अधिकारी है।

बात सुनकर सब ने दुःख प्रकट किया, केवल एकादशी ही चु
बैठा रहा। कुछ देर बाद पूछा, रुपए जमा करने की चिट्ठी-विट्ठी है
जाओ, अपनी माँ से पूछ आओ।

लड़के ने पूछ आकर कहा, कागज-पत्र कुछ नहीं हैं,
जल गए।

एकादशी ने पूछा, कितने रुपए?

इस बार विधवा ने आगे बढ़कर माथे के कपड़े को खींचते
वाब दिया, ससुरजी मरते समय कह गए थे, पाँच सौ रुपए
करके वे तीर्थ यात्रा को गए थे। भाई, हमलोग बड़े गरीब हैं
रुपए मत दो; परन्तु हमलोगों को भीख ही देदो, कह कर
भीतर-ही-भीतर घुमड़ती हुई रोने लगे। घोषाल ...
खाता-पत्र छोड़कर एकाग्रचित्त से सुन रहे थे। उन्होंने

प्रश्न किया, कहता हूँ कोई साक्षी-वाक्षी भी है ?

विधवा गर्दन हिलाकर बोली, नहीं। हमलोग भी नहीं जानते थे। ससुरजी गुप्त रूप से रुपए जमा करके रख गए थे।

घोषाल मृदु हास्य करता हुआ बोला, केवल रोने से ही तो नहीं चलेगा भाई! यह सब नक़द रुपए-पैसे का मामला ठहरा! साक्षी नहीं, हाथ की रसीद नहीं, तब क्या होगा, तुम्हीं बताओ ?

विधवा फफक-फफक कर रोने लगी; परन्तु रोने का परिणाम क्या होगा, यह किसी को समझना बाकी नहीं रहा। इस बार एकादशी ने बात कही, घोषाल की ओर पाँच सौ रुपए किसी ने जमा करके फिर लिए नहीं हैं। तुम एक बार पुराने खातों में ढूँढ़ कर देख देखो, कुछ लिखा-विखा है या नहीं ?

घोषाल ने झल्ला कर कहा, कौन इस वक्त भूत की बेगार करने जाए बाबू ? साक्षी नहीं, रसीद-पत्र नहीं...

बात समाप्त होने से पूर्व ही दरवाजे के अन्तराल से जवाब आया, रसीद-पत्र न होने से क्या ब्राह्मण के रुपए डूब जाएँगे ? पुराना खाता देखो, आप न देख सकें तो मुझे दीजिए देखे देती हूँ।

सभी ने आश्चर्य-चकित होकर दरवाजे की ओर आँखें उठाईं, परन्तु जिसने हुक्म दिया था, उसे नहीं देखा जा सका।

घोषाल ने नरम होते हुए कहा, कितने वर्ष हो गए माँ! इतने दिनों का खाता ढूँढ़ कर बाहर निकालना भी तो सरल काम नहीं है। बही-खातों के ढेर पड़े हैं। हाँ, यदि जमा होंगे तो अवश्य मिल जाएँगे। फिर विधवा को सम्बोधित करते हुए कहा, तुम बेटी, रोओ मत, हक के रुपए होंगे तो अवश्य पाओगी। अच्छा, कल एकबार मेरे घर आना; सब बातें पूछ कर खाता ढूँढ़ कर निकाल दूँगा। आज इतनी अबेर हो गई है कि कुछ हो नहीं सकता।

विधवा उसी क्षण सहमत होती हुई बोली, अच्छा बाबा, कल

सवेरे ही आपके घर आ जाऊँगी।

आ जाना, कह कर घोषाल ने गर्दन हिलाकर अपने सामने खुले हुए खाते को सदैव की भाँति बंद करके रख दिया।

परन्तु पूछने-ताछने के बहाने विधवा को घर बुलाने का मतलब अत्यन्त स्पष्ट था। अन्तराल से गौरी ने कहा। आठ वर्ष पहिले—तो शायद १३०१ सम्वत् (बँगला सम्वत्) के खाते को खोल कर एक बार देखो तो सही, रुपए जमा हैं या नहीं ?

घोषाल ने कहा, इतनी जल्दी किसलिए माँ !

गौरी ने कहा, मुझे दीजिए, मैं देखे देती हूँ। ब्राह्मण की स्त्री दो कोस पैदल चल कर आई है—दो कोस इस धूप में पैदल जाएगी, फिर कल आपके पास आएगी, इतने झंझट का क्या काम है घोषाल काका ?

एकादशी ने कहा, ठीक तो है घोषालजी, ब्राह्मण की स्त्री को झूँठमूठ हैरान करना क्या अच्छा है ? बापरे ! देखो, देखो, चटपट देख दो।

क्रुद्ध घोषाल उठ जाकर समीप के कमरे से १३०१ सम्वत् का खाता बाहर निकाल लाए। दस मिनट तक पन्ने उलटने के बाद अचानक अत्यन्त खुश होते हुए कह उठे, वाह ! हमारी गौरी माता की बुद्धि ! ठीक इसी साल के खाते में जमा रक़म पा गई ! यह रहा सूक्ष्म रामलोचन चटर्जी का जमा पाँच सौ—

एकादशी ने कहा, देखो, झटपट ब्याज का हिसाब भी लगा दो घोषाल महाशय !

घोषाल ने चकित होकर कहा, अब ब्याज भी ?

एकादशी ने कहा, क्यों, नहीं दोगे क्या ? रुपए इतने दिनों तक काम में ही लगे रहे, रक्खे तो रहे नहीं। आठ वर्ष की ब्याज, इन कुछ महीनों की ब्याज छोड़ दी जाएगी।

तबतक सूद और मूल के प्राय: साढ़े सात सौ रुपए हुए थे। एकादशी ने बहिन को लक्ष्य करते हुए कहा, दीदी, रुपयों को सन्दूक में से बाहर निकाल लाओ। हाँ बिटिया, सभी रुपए एक साथ ले जाओगी न ?

विधवा के अन्तर की बात अन्तर्यामी ने सुन ली। आँखें पोंछकर प्रकट रूप में बोली, नहीं बाबा, इतने रुपयों की मुझे जरूरत नहीं है; मुझे इस समय केवल पचास रुपए दे दो।

इतने ही ले जाओ बहू। घोषाल महाशय, खाते को एकबार दो, दस्तखत कर दूँ; और बाकी रुपयों की तुम एक रसीद लिख दो।

घोषाल ने कहा, मैं ही दस्तखत किए देता हूँ। आप फिर...

एकादशी ने कहा, नहीं, नहीं, मुझे ही दो न पण्डित, अपनी आँखों से देख लूँ। कहकर खाता लेकर आधी मिनट तक उसे आँखों देखने के बाद हँसता हुआ बोला, घोषाल महाशय, यह जो एक जोड़ असली मोती ब्राह्मण के नाम से जमा है ! मैं खूब जानता हूँ पण्डितजी महाराज, आपको हर समय ठीक दिखाई नहीं देता, कह कर एकादशी दरवाजे की ओर देखता हुआ तनिक हँसने लगा। इतने लोगों के सम्मुख मालिक की इस व्यंग्योक्ति से घोषाल का मुँह काला होगया।

उस दिन का सब काम निबट जाने पर अपूर्व अपने साथियों को लिए जिस समय उत्तप्त मार्ग पर बाहर निकल पड़ा, उस समय उसके मन के भीतर एक विप्लव चल रहा था। घोषाल साथ ही था, उसने विनयपूर्वक आह्वान करते हुए कहा, आइए, दरिद्र के घर में और कुछ नहीं तो थोड़े से गुड़ के साथ पानी पीकर चले जाइएगा।

अपूर्व कोई बात न कह कर चुपचाप पीछे-पीछे चलने लगा। घोषाल का शरीर जला जा रहा था; उसने एकादशी को लक्ष्य करते हुए कहा, देखा आपने, साले छोटे लोगों की हिमाक़त ! आप जैसी

ब्राह्मण-सन्तानों के पाँव की धूलि पड़ने से हरामजादे की सोलह पीढ़ियाँ तर गई; साला पिशाच है जो पाँच आने पैसे देकर भिखारी को टकरा देना चाहता है।

विपिन ने कहा, दो दिन सब्र करो न; हरामजादे महापापी के धोबी, नाई बन्द करवा के पाँच आने पैसे देना बाहर निकाले देता हूँ। राखाल बाबू हमारे कुटुम्बी हैं, यह जान लेना घोषाल महाशय।

घोषाल ने कहा, मैं ब्राह्मण हूँ। दोनों समय सन्ध्या आह्निक किए बिना जल भी नहीं पीता, दो मोतियों के लिए दोपहर के समय किस तरह मेरा अपमान कर दिया यह तो आप लोगों ने आँखों से देख ही लिया। साले का भला होगा? यह कभी सोचिएगा भी नहीं। वह साली—जिसके छू लेने से नहाना पड़े, क्या समझ कर ब्राह्मणों के लड़कों के लिए पानी लेकर आई, रुपए की गर्मी कैसी होगई है, एकबार स्वयं ही सोचकर देखिए न।

अपूर्व ने अबतक एक भी बात में योग नहीं दिया था; वह अचानक ही रास्ते में खड़ा रह गया और बोला, अनाथ, मैं लौटा जाता हूँ भाई, मुझे बड़ी जोर की प्यास लगी है।

घोषाल ने चकित होकर कहा, लौटकर कहाँ जाएँगे? यह सामने ही तो मेरा मकान दिखाई देता है।

अपूर्व ने सिर हिलाते हुए कहा, आप इन लोगों को ले जाइए, मैं जारहा हूँ इस एकादशी के घर में ही पानी पीने के लिए।

एकादशी के घर में पानी पीने के लिए! सब लोग अपनी आँखें माथे पर चढ़ाकर खड़े रहे। विपिन उसका हाथ पकड़कर थोड़ा-सा खींचता हुआ बोला, चलो, चलो, दोपहर की धूप में रास्ते के बीच और मज़ाक नहीं चलेगी। तुम ऐसे ही व्यक्ति हो क्या! तुम पिओगे एकादशी की बहिन द्वारा स्पर्श किया हुआ पानी?

अपूर्व ने हाथ खींचकर दृढ़ स्वर में कहा, सचमुच ही मैं उसका दिया हुआ पानी पीने के लिए लौट रहा हूँ। तुम लोग घोषाल महाशय के घर जाकर पी आओ, मैं इस पेड़ के नीचे प्रतीक्षा करता हुआ बैठा मिलूँगा।

उसके शान्त स्थिर कण्ठस्वर से हतबुद्धि होते हुए घोषाल ने कहा, इसका प्रायश्चित् करना पड़ेगा, जानते हैं ?

अनाथ ने कहा, पागल तो नहीं होगए ?

अपूर्व ने कहा, कुछ नहीं जानता; परन्तु प्रायश्चित् भी करना पड़ा तो उस समय धीरे-सुस्ते बैठकर सोचा जाएगा; परन्तु इस समय मैं रुक नहीं सकता, कह कर उसने उस कड़ी धूप में शीघ्रतापूर्वक एकादशी के घर की ओर प्रस्थान किया।



१

एक गाँव में नदी के तट पर कुम्हारों के दो मकान थे। उनका कार्य था नदी में से मिट्टी उठाकर और उसे साँचे में ढालकर खिलौने बनाना तथा हाट (बाजार) में ले जाकर उन्हें बेच देना। परम्परा से उनके यहाँ यही कार्य होता चला आया है और इस के द्वारा उनके ओढ़ने-पहिनने, खाने-पीने आदि व खर्च चलता रहता है। स्त्रियाँ भी काम करती हैं, पानी भरती हैं, रसोई बनाकर पति-पुत्र आदि खिलाती हैं एवं अवा ठण्डा होजाने पर उसमें से हुए खिलौने निकाल-निकाल कर, उन्हें अपने आँ से झाड़-पोंछ कर रंग आदि लगाने के लिए पुरुषों के सामने रख दिया करती हैं।

इन्हीं कुम्हार-परिवारों के बीच आकर शक्तिनाथ ने अपने रहने के लिए एक स्थान बना लिया यह रोग-क्लिष्ट ब्राह्मण बालक अपने भाई-ब कूद, पढ़ाई-लिखाई—सब कुछ त्याग अचानक ही इन मिट्टी के खिलौने क वह खपाची की छुरी को धो देत

लगी हुई मिट्टी को साफ कर देता एवं उत्कण्ठित हृदय से यह देखता रहता कि खिलौनों पर रंग-रोगन किस प्रकार की असावधानी से किया जाता है। स्याही द्वारा खिलौनों की भौंहें, आँख, ओठ आदि बना दिए जाते, किसी की भौंह मोटी हो जाती तो किसी की आधी ही बन पातीं, किसी के ओठ के नीचे स्याही का दाग़ लग जाता तो किसी के कुछ और हो जाता। शक्तिनाथ अपनी अधीर उत्सुकता से प्रार्थना किया करता, सरकार भय्या, ऐसी लापरवाही से रङ्ग क्यों करते हो? सरकार भय्या अर्थात् कारीगर कुम्हार, स्नेहपूर्वक हँसता हुआ उत्तर देता, महाराज, अच्छी तरह रँगने में जो समय लगता है, उसके पैसे कौन देता है, बताओ? एक पैसे का खिलौना चार पैसे में तो विकेगा ही नहीं?

२

इस सरल बात की बहुत कुछ आलोचना करने पर भी शक्तिनाथ केवल आधी ही बात समझ पाया। एक पैसे का खिलौना केवल एक पैसे में ही विकेगा, चाहे उसकी भौंहें पूरी बनी हों अथवा आधी हों। दोनों आँखें चाहें समान हों अथवा असमान, कैसी भी हों—केवल वही एक पैसा। तब कौन व्यर्थ ही इतना परिश्रम करे? खिलौनों को लड़के खरीदेंगे, दो घड़ी उसे प्यार करेंगे, सुलाएँगे, गोद में लेंगे—उसके पश्चात् तोड़-ताड़ कर फेंक देंगे—बस इतना ही तो?

शक्तिनाथ प्रातःकाल घर से जो मूड़ी-मुड़की (चावल की बनी लाई आदि) धोती में बाँध कर लाया था, उसका कुछ हिस्सा अभी तक बँधा हुआ है। उसे खोल कर बहुत ही अनमने भाव से चबाते तथा बिखेरते हुए वह अपने टूटे-फूटे मकान के आँगन में आ खड़ा हुआ। घर में कोई था नहीं। जीर्ण-स्वास्थ्य वृद्ध पिता जमींदार के

मदनमोहन भगवान की पूजा करने के लिए गए थे। वहाँ से वे हुए अरवा चावल, केले, मूली आदि भगवान पर चढ़ाए गए द्य को बाँध कर लाएँगे, तदुपरान्त उसे राँध कर पुत्र को लाएँगे। घर का आँगन कुन्द, कनेर तथा हारसिंगार के पौधों से रपूर्ण है। गृहलक्ष्मी-विहीन मकान में चारों ओर जंगल दिखाई ता है, किसी प्रकार का कोई क्रम नहीं, किसी वस्तु में कोई सजावट हीं। वृद्ध भट्टाचार्य्य मधुसूदन किसी प्रकार दिन काटते हैं। शक्ति-नाथ फूँस तोड़ता, डालियों को हिलाता एवं पत्तियों को नोंचता हुआ अन्यमनस्क भाव से आँगन में घूमने-फिरने लगा।

प्रतिदिन प्रातःकाल शक्तिनाथ कुम्हारों के घर जाया करता है। इन दिनों उसे खिलौनों पर रंग लगाने का अधिकार प्राप्त हो गया है। उसका सरकार-भय्या बड़े यत्नपूर्वक सब से अच्छा खिलौना छाँट कर उसके हाथ में देता और कहता, लो महाराज, तुम इसे रँगो। महाराज दोपहर तक उस एक ही खिलौने को रङ्गते रहते। सम्भवतः वह बहुत अच्छा रँगा जाता, फिर भी एक पैसे से अधिक मूल्य कोई नहीं देता। परन्तु सरकार-भय्या घर आकर सूचना देता, महाराज का रँगा हुआ खिलौना दो पैसे में बिका यह सुनकर शक्ति-नाथ प्रसन्नता से फूला नहीं समाता।

२

इस गाँव के ज़मींदार जाति के कायस्थ हैं। देवता-ब्राह्... पर उनकी भक्ति बहुत अधिक है। गृह-देवता मदनमोहन की प्र... कसौटी (काले रङ्ग के पत्थर) की बनी हुई है, समीप ही ... ञ्जित श्री राधा हैं—अत्यन्त ऊँचे मन्दिर में रौप्य सिंहासन पर ... द्वारा प्रतिष्ठित। वृन्दावन-लीला के कितने ही अपूर्व सुन्द...

दीवारों पर टँगे हुए हैं। ऊपर कीनखाव का चँदोवा है, जिसके मध्य में सैकड़ों शाखाओं वाला भाड़ लटक रहा है। एक ओर संगमरमर की वेदी पर पूजा की सामग्री सजी हुई है तथा नित्य-निवेदित पुष्प-चन्दन के घन-सौरभ से सम्पूर्ण मन्दिर सुरभित होता रहता है। सम्भवतः स्वर्ग के सुख एवं सौन्दर्य की स्मृति दिलाने के हेतु ही यह पुष्प तथा सुगन्ध पूजा का प्रथम उपचार बने हुए हैं एवं उसी की मृदु-तर सुरभि ने वायु के स्तरों में सञ्चित होकर इस मन्दिर की वायु को घनीभूत बना रक्खा है।

४

बहुत पुरानी बात कह रहा हूँ। जमींदार नारायण बाबू जिस दिन प्रौढ़ता की सीमा में पाँव रखते हुए पहिले पहल यह समझ कि इस जीवन की छाया क्रमशः दीर्घ तथा अस्पष्ट होती चली जा र है, जिस दिन उन्होंने प्रातःकाल पहिले पहल यह अनुभव किया इस जमीदारी तथा धन-ऐश्वर्य के भोग की अवधि दिन-प्रति-f घटती जा रही है और जिस दिन पहिले पहल उन्होंने मन्दिर के कोने में खड़े होकर अपनी आँखों से पश्चाताप के आँसू बहाए—: दिन की बात मैं कह रहा हूँ। उस समय उनकी इकलौती सतान व अपर्णा केवल पाँच वर्ष की आयु की छोटी-सी बालिका थी। वह f के पाँवों के समीप खड़ी होकर एकाग्रचित्त से देखा करती, मधु भट्टाचाय मंदिर के उस काले खिलौने पर चन्दन लगा रहे हैं, सिंह को फ़ूलों से सजा रहे हैं तथा उसकी स्निग्ध सुगंध आशीर्वाद की जैसे उसे स्पर्श करती फिरती है। इस दिन के बाद प्रदिदिन बालिका संध्या के पश्चात् अपने पिता के साथ देवता की अ देखने के लिए आया करती एवं मंगलोत्सव के बीच अकारर

आत्मविभोर होकर देखती रह जाती।

अपर्णा धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। हिन्दू घरों की लड़कियाँ जिस प्रकार ईश्वर की धारणा को हृदयङ्गम किया करती हैं, उसी प्रकार वह भी करने लगी। उस मन्दिर को अपने पिता की अत्यन्त आदरणीय वस्तु जानकर, उसे वह अपने ही हृदय के रक्त के समान अनुभव करने लगी तथा प्रत्येक कार्य एवं खेल-कूद में भी इस बात को प्रमाणित करने लगी। वह दिन भर उसी मन्दिर के आस-पास बनी रहती सूखी घास के एक तिनके अथवा सूखे हुए फल का भी मंदिर के भीतर पड़े रहना उसे सहन नहीं होता। यदि कहीं एक बूँद पानी गिर पड़े तो वह उसे अपने आँचल से पोंछ देती। राजनरायण बाबू की देवनिष्ठा को लोग ज्यादती समझा करते थे, परंतु अपर्णा की देव-सेवा-परायणता उस सीमा का भी अतिक्रमण करने लगी। पुष्प रखने के पुराने पात्र में अब फूल नहीं समाते—अतः एक दूसरा बड़ा पात्र मँग-वाया गया है। चन्दन की पुरानी कटोरी भी बदल दी गई है। भो तथा नैवेद्य की मात्रा पहले से बहुत अधिक बढ़ गई है। यहाँ तक नित नई अनेकों प्रकार की पूजा का आयोजन एवं उसकी निर्दो व्यवस्था के झंझट में पड़कर वृद्ध पुरोहित भी घबरा उठे हैं। जमीं राजनारायण बाबू यह सब देख-सुनकर भक्ति तथा स्नेहपूर्ण ग कण्ठ से कहा करते, देवता ने अपनी सेवा के लिए स्वयं ही लक्ष्मी भेज दिया है, तुम लोग कुछ कहो-सुनो मत।

५

यथासमय अपर्णा का विवाह भी हो गया। इस अशंक अब उसे मन्दिर छोड़कर अलग चला जाना पड़ेगा, उसके ह हँसी असमय में ही सूख गई। मुहूर्त्त ठीक किया जा र

राल जाना पड़ेगा। जिस प्रकार घनीभूत विजली को अपने हृदय में दबाए हुए वर्षा के घने काले बादल अवरुद्ध गौरव के गुरुभार से स्थिर हो, कुछ समय तक आकाश में वर्षा के लिए तत्पर से खड़े रहते हैं, उसी प्रकार एक दिन अपर्णा ने भी स्थिर होकर यह सुना कि मुहूर्त्त का दिन आज आ पहुँचा है। उसने पिता के समीप जाकर कहा, पिताजी, मैं भगवान की सेवा का सब प्रबन्ध किए जाती हूँ, उसमें किसी प्रकार का अन्तर न आने पाए।

वृद्ध पिता रो उठे, बोले—सो तो बिटिया, नहीं, कोई अन्तर नहीं आएगा।

अपर्णा चुपचाप लौट आई। उसकी माँ नहीं है, वह रो नहीं सकी। वृद्ध पिता के दोनों नेत्रों में आँसू भरे हुए हैं, वह क्रुद्ध कैसे हो सकती है ? इसके पश्चात्, जिस प्रकार योद्धा पुरुष अपने व्यथित क्रन्दोन्मुख वीर-हृदय को पौरुष-शुष्क हँसी से ढँककर शीघ्रता पूर्वक घोड़े पर सवार होकर चल देता है, उसी प्रकार अपर्णा भी पालकी में चढ़कर, गाँव छोड़कर, अज्ञात कर्त्तव्य के शासन को मस्तक पर धारण कर चली गई। अपने उच्छ्वसित आँसुओं को पोंछते समय स्मरण हो आया की वह अपने पिता के आँसू तो पोंछ ही नहीं आई। उसका हृदय रो-रोकर निरन्तर न जाने कितनी शिकायतें करने लगी एक तो उसका हृदय वैसे ही सैकड़ों व्यथाओं से पीड़ित था, उस पर भी जब न जाने कहाँ किस ग्रामान्तर के मन्दिर में सन्ध्या के समय शङ्ख-घण्टे बज उठे तो वह आजन्म-परिचित आरती के आह्वान का शब्द उसके कानों के मार्ग से मर्म तक पहुँचकर नैराश्य का हा-हाकार भरने लगा। अपर्णा ने छटपटाकर पालकी का द्वार खोल दिया, वह संध्या के अन्धकार में से देखने लगी एवं छायाच्छन्न ऊँची देवदारु की चोटी पर एक परिचित मन्दिर के समुन्नत शिखर की कल्पना करती हुई उच्छ्वसित आवेग के कारण रो उठी। ससुराल की एक दासी उसके पीछे ही चली आ रही थी। उसने शीघ्रता-पूर्वक समीप आकर

कहा छि: बहूजी ? क्या इस तरह रोना चाहिए ? भला, ससुराल कौन नहीं जाता ?

अपर्णा ने अपना मुँह दोनों हाथों से ढँक कर रोना बन्द कर दिया तथा पालकी के किवाड़ भी बन्द कर लिए।

ठीक इसी समय मन्दिर के भीतर खड़े हुए पिता राजनारायण मदनमोहन भगवान की मूर्त्ति के सम्मुख धूप के धूम्र तथा आँसूओं से अस्पष्ट एक देवी-मूर्त्ति के अनिन्द्य सुन्दर मुख पर अपनी प्रिय पुत्री के मुख की छवि को जैसे साकार रूप में देख रहे थे।

६

अपर्णा अब पति के घर में रहती है। यहाँ उससे पति के साथ अनिच्छित-सम्भाषण में तनिक भी आवेग एवं तनिक भी चाञ्चल्य प्रदर्शित नहीं होता। प्रथम प्रणय का स्निग्ध सङ्कोच एवं मिलन की सलज्ज उत्तेजना, कोई भी उसके म्लान चक्षुओं में पहिले जैसी दीप्ति वापिस न ला सकी। प्रारम्भ से ही पति-पत्नी जैसे परस्पर एक दूसरे के समक्ष दुर्बोध अपराधी की भाँति बने हुए हैं एवं उसी की क्षुब्ध वेदना कुल प्लाविनी उच्छ्वसिता तटनी की भाँति एक दुर्लंघ्य व्यवधान खड़ा करके बहती चली जा रही है।

एक दिन बहुत रात्रि व्यतीत हो जाने पर अमरनाथ ने धीरे से पुकार कहा—अपर्णा, तुम्हें यहाँ रहना अच्छा नहीं लगता ?

अपर्णा जग रही थी, बोली—नहीं.

अमर ने कहा—मायके जाओगी ?

अपर्णा बोली—जाऊँगी।

अमर ने पूछा—कल जाना चाहती ?

अपर्णा ने कहा—हाँ, जाना चाहती

क्षुब्ध-अमरनाथ यह उत्तर सुन कर अवाक् रह गया। कुछ देर चुप रहने के पश्चात् बोला—और यदि जाना न हो सके तो ?

अपर्णा ने कहा—तब जैसे हूँ, वैसे ही बनी रहूँगी।

तदुपरान्त कुछ देर तक दोनों चुप रहे। अमरनाथ ने पुकारा, अपर्णा !

अपर्णा अन्यमनस्कभाव से बोली—क्या है ?

क्या तुम्हें मेरी कोई आवश्यकता नहीं हैं ?

अपर्णा ने वस्त्र द्वारा अपने सर्वाङ्ग को ढाँक कर आराम से सोते हुए कहा—इन सब बातों से बहुत झगड़ा खड़ा हो जाता है, ऐसी बातें मत करो।

झगड़ा खड़ा हो जाता है—यह कैसे जाना ?

जानती हूँ, मेरे मायके में मँझले भय्या तथा मँझली भाभी में इसी बात पर प्रतिदिन खटपट हो जाती है। मुझे लड़ाई-झगड़ा अच्छा नहीं लगता।

सुनकर अमरनाथ उत्तेजित हो उठा। वह इसी बात को अँधेरे में टटोलता हुआ अब तक ढूँढ़ रहा था सो अचानक आज वह जैसे हाथ में आ लगी; बोला—आओ, अपर्णा ! हम भी झगड़ा करें। इस प्रकार रहने की अपेक्षा तो लड़ाई-झगड़ा करना लाखगुना अच्छा है।

अपर्णा ने स्थिरभाव से कहा—छिः, झगड़ा क्यों करें ? तुम सो जाओ।

इसके पश्चात् इस बात को अपर्णा चाहे सोती रही या जगती रही हो, परन्तु अमरनाथ रात भर जागते रहने पर भी नहीं समझ सका।

सवेरे से लेकर शाम तक अपर्णा का सारा दिन काम-काज एवं जप-तप में ही व्यतीत हो जाता है। यह देखकर कि वह रस-रंग एवं

हास्य-कौतुक में तनिक भी भाग नहीं लेती, उसकी बराबरी की स्त्रियाँ हँसी-हँसी में न जाने क्या-क्या कहती रहतीं। ननदें उसको गुसाईंजी कह कर हँसी उड़ातीं तो भी वह उनके दल में मिश्रित न हो सकी। बारम्बार यही सोचने लगी कि उसके दिन व्यर्थ ही बीते चले जा रहे हैं। और यह जो अलक्ष्य आकर्षण से उसका प्रत्येक रक्तबिन्दु उस पितृप्रतिष्ठित मन्दिर की ओर भाग जाने के लिए, पूर्णिमा के दिन उद्वेलित समुद्र के जल की भाँति हृदय के कूल-उपकूल पर निशि-दिन पछाड़ें खा रहा है, उसे कैसे रोका जाय? घर-गृहस्थी के कार्य से अथवा छोटे-मोटे हास-परिहास से ? उसका क्षुब्ध अस्वस्थ चित्त, जो एक भारी भ्रान्ति को मस्तक पर लादे हुए स्वयं ही चक्कर खाकर मर रहा है, उसके समीप तक पति का लाड़-प्यार एवं स्नेह, परिजन वर्ग का प्रीति-सम्भाषण किस प्रकार पहुँचे ? किस प्रकार वह इस बात को समझे कि कुमारी की देव-सेवा द्वारा नारीत्व के कर्त्तव्य का सम्पूर्ण परिसर परिपूर्ण नहीं किया जा सकता ?

७

अमरनाथ की समझ की ही भूल है, वह उपहार लेकर स्त्री के समीप आया है। दिन के लगभग नौ-दस बज रहे होंगे। स्नान के पश्चात् अपर्णा पूजा करने के लिए जा रही थी। जहाँ तक सम्भव हुआ, अमरनाथ ने अपने कण्ठस्वर को मधुर बनाते हुए कहा— अपर्णा ! तुम्हारे लिए कुछ उपहार लाया हूँ, कृपा कर स्वीकार करोगी क्या ?

अर्पणा ने मुस्कुराते हुए कहा—लूँगी क्यों नहीं !

अमरनाथ के हाथ में चन्द्रमा आ गया। वह आ...

शौकीनी-रूमाल में बँधे हुए एक सोफियाने बक्स का ... बैठ गया। ढक्कन के ऊपर सुनहरे अक्षरों में अपर्णा ...

हुआ है। अब उसने अपर्णा का चेहरा देखने के लिए एक बार उसके मुँह की ओर देखा, तो ज्ञात हुआ कि जिस प्रकार कोई आदमी काँच की बनी हुई नकली आँख लगाकर किसी को देखता है, उसी प्रकार अपर्णा भी उसकी ओर देख रही है। यह देखकर उसके सम्पूर्ण उत्साह ने पलभर में बुझकर मानो एक बूँद अर्थहीन सूखी हँसी में स्वयं को छिपा लेना चाहा। लज्जा से गढ़ जाने पर भी उसने वक्स का ढक्कन खोलकर कुन्तलीन आदि कई शीशियाँ और न जाने क्या-क्या निकालना आरम्भ कर दिया, परन्तु तभी अपर्णा ने वाधा देते हुए कहा—क्या यही सब मेरे लिए लाए हो ?

अमरनाथ के वदले जैसे किसी और ने उत्तर दिया—हाँ, तुम्हारे ही लिए तो लाया हूँ—दिलखुश की शीशियाँ।

अपर्णा ने पूछा—वक्स भी मुझे दे दिया क्या ?

अवश्य !

तो फिर सब को यों ही बाहर क्यों निकाल रहे हो ? वक्स में ही रहने दो न सब को !

अच्छा रहने दो, तुम लगाओगी न ?

अचानक अपर्णा की भौंहें सिकुड़ गईं। सम्पूर्ण दुनियाँ से लड़ाई लेकर उसका क्षत-विक्षत हृदय परास्त होकर, वैराग्य ग्रहण कर, चुपचाप एकान्त में जा बैठा था, इस स्नेह के अनुरोध ने उसके ऊपर अचानक कुत्सित उपहास का आघात कर दिया; चंचल होकर वह उसी समय प्रतिघात कर वैठी; वोली—नष्ट नहीं होगा, रखदो, मेरे अतिरिक्त और वहुत से लोग भी इनका उपयोग करना जानते हैं। इतना कह, वह उत्तर के लिए तनिक भी प्रतीक्षा किए विना पूजा-गृह में चली गई;तथा अमरनाथ विह्वल की भाँति उस अस्वीकृत उपहार पर हाथ रक्खे हुए, उसी प्रकार वैठा रहा। सर्वप्रथम उसने अपने मन को सहस्रों वार निर्वोध कह कर तिरस्कृत किया। तदुपरांत वहुत देर पश्चात् उसने एक गहरी साँस भरते हुए कहा—अपर्णा !

तुम पाषाणी हो ! उसकी आँखों में आँसू भर आए। वह उसी स्थान पर बैठा हुआ बार-बार अपनी आँखें पोंछने लगा। अपर्णा यदि स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार कर देती तो बात का प्रभाव कुछ और ही प्रकार का होता। वह जो अस्वीकार किए बिना भी अस्वीकृति की सम्पूर्ण जलन उसके शरीर पर पोत गई उसका प्रतिकार वह किस प्रकार करे ? क्या वह अपर्णा को पूजा के आसन से खींच लाकर, उसी के समक्ष, उसके द्वारा उपेक्षित उपहार को स्वयं ही लात मार-मार कर तोड़-फोड़ डाले और सबके समक्ष यह भीषण प्रतिज्ञा करे कि अब वह कभी उसका मुँह भी नहीं देखेगा ? वह क्या करे, कितना और कहे, कहाँ लापता होकर चला जाए, क्या भस्म रमाकर साधु-सन्यासी हो जाए और कभी अपर्णा के दुर्दिनों में अचा..क कहीं से आकर उसकी रक्षा करे ? इस प्रकार के सम्भव-असम्भव न जाने कितने प्रकार के उत्तर-प्रत्युत्तरत था। वाद-प्रतिवाद उसके अपमान-पीड़ित मस्तिष्क में अधीरता से उत्पन्न होने लगे। परिणाम यह हुआ कि वह उसी प्रकार बैठा रहा और वैसे ही रोने लगा परन्तु किसी प्रकार उसके इन प्रारम्भ से अन्त तक के विशृङ्खल संकल्पों की लम्बी सूची पूरी न हो

६

इसके पश्चात् दो दिन और दो रातें बीत गईं, अमरनाथ घर सोने के लिए नहीं आया। माँ को पता चलने पर उन्होंने बहू को बुला कर थोड़ा-बहुत डाँटा-फटकारा एवं पुत्र को बुला कर समझाया-बुझाया। ददिया सास भी इस सम्बन्ध में थोड़ी-सी हँसी उड़ा गईं। इस प्रकार सात-पाँच में पड़कर बात हल्की हो गई। रात्रि को अपर्णा ने पति से क्षमा की भिक्षा माँगते हुए कहा—यदि मन में कष्ट पहुँचा हो तो मुझे क्षमा कर दो। अमरनाथ बात नहीं कर सका। एक

किनारे बैठ कर विछौने की चादर को बारम्बार खींच कर उसे झाड़ने लगा। अपर्णा सामने ही खड़ी थी, उसके अधरों पर म्लान मुस्कुराहट थी, उसने फिर कहा—क्षमा नहीं करोगे ?

अमरनाथ ने सिर झुकाए हुए ही कहा, क्षमा किसलिए ? और क्षमा करने का मुझे अधिकार ही क्या है ?

अर्पणा ने पति के दोनों हाथों को अपने हाथ में लेते हुए कहा, ऐसी बात मत कहो। तुम मेरे पति हो, तुम नाराज रहोगे तो मेरी गुज़र कैसे होगी ? तुम क्षमा न करोगे तो मैं कहाँ खड़ी होऊँगी ? क्या रुष्ट होगए हो, बताओ न ?

अमरनाथ ने आर्द्र होते हुए कहा—रुष्ट तो नहीं हुआ।

नहीं हुए तो ?

नहीं।

अर्पणा को कलह पसन्द नहीं है, अतः विश्वास न होते हुए भी विश्वास करते हुए कहा—तो ठीक है।

इसके पश्चात् वह बिल्कुल निश्चिन्त होकर बिस्तर के एक ओर सो रही।

परन्तु अमरनाथ को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ, दूसरी ओर मुँह फेर कर वह बारबार मन-ही-मन यह तर्क-वितर्क करने लगा कि उसकी स्त्री ने इस बात पर विश्वास कैसे कर लिया ? मैं दो दिन नहीं आया, मिला भी नहीं—फिर भी मैं रुष्ट नहीं हूँ, यह क्या कोई विश्वास कर लेने की बात है? इतनी बड़ी घटना इतनी शीघ्र समाप्त होकर मिट गई। इसके पश्चात् जब उसने समझ लिया कि अपर्णा सचमुच ही सो गई है तो वह एकदम उठकर बैठ गया तथा बिना किसी द्विविधा के जोर से पुकार बैठा—अपर्णा ! क्या तुम सो रही हो ? अपर्णा !

अपर्णा जग गई, बोली—पुकार रहे हो क्या ?

हाँ, मैं कलकत्ते चला जाऊँगा।

कहाँ, यह बात तो पहले कभी सुनी नहीं ! इतनी जल्दी तुम्हारे कॉलिज की छुट्टियाँ समप्त होगईं ? अभी और दो-चार दिन नहीं ठहर सकते ?

नहीं, अब ठहरना न हो सकेगा।

अपर्णा ने कुछ सोच-विचार कर फिर पूछा – तो क्या तुम मेरे ऊपर रुष्ट होकर जारहे हो ?

बात सच है, अमरनाथ भी जानता है, परन्तु वह इसे स्वीकर न कर सका। सङ्कोच ने आकर जैसे उसकी धोती का छोर पकड़कर उसे लौटा लिया।

आशंका हुई, कहीं वह अपना निकम्मापन प्रमाणित करके अपर्णा के सम्मान की हानि न कर बैठे,इस प्रकार इस कौतूहल-विमुख नारी की निश्चेष्टता ने उसे अभिभूत कर दिया। स्वामित्व का जितना तेज उसने अपने स्वाभाविक अधिकार से ग्रहण किया था, उस सबको अपर्णा ने इन चार-पाँच महीनों में ही खींचकर निकाल लिया है, अब वह क्रोध करे भी तो किस बूते पर ! अपर्णा ने पुनः कहा—रुष्ट होकर कहीं मत जाना, अन्यथा मेरे हृदय को बड़ी चोट पहुँचेगी।

अमरनाथ झूठ और सच को मिलाकर जो कुछ बनाकर कह सका, उसका अर्थ यह था कि वह रुष्ट नहीं हुआ और उसके प्रमाण-स्वरूप वह अभी और भी दो-तीन दिन ठहरने के पश्चात् तब चला जाएगा। दो दिन रहा भी। परन्तु रोकर विजयी बनने की एक लज्जाजनक बेचैनी उसके मन में बनी ही रही।

९

एक साथ जोर की वर्षा आ जाने में एक लाभ है—

आकाश निर्मल हो जाता है। परन्तु बूँदा बाँदी से बादल तो साफ होते ही नहीं, उल्टे पाँवों तले कीचड़ एवं चारों ओर निरानन्दमय भाव बढ़ जाया करता है। अपने घर से जिस कीचड़ को लपेट कर अमरनाथ कलकत्ते आया था, धो डालने के लिए इतनी बड़ी महान नगरी में उसे तनिक-सा पानी भी ढूँढ़े न मिल सका। यहाँ उसके पूर्व परिचित जितने भी सुख थे, उनके समक्ष अपने कीचड़ से सने हुए पाँव निकालने में भी उसे लज्जा अनुभव होने लगी। न तो उसका मन पढ़ने-लिखने में लगता और न हँसी-खेल में ही तबियत लग पाती। न तो यहाँ रहने की इच्छा ही होती है और न घर जाने की तबियत ही करती है। उसकी छाती पर जैसे दुस्सह यन्त्रणा का बोझ सा लदा हुआ है, और उसे धकेल देने के लिए व्याकुल हृदय की पसलियाँ परस्पर टकरा रही हैं। परन्तु सम्पूर्ण चेष्टाएँ व्यर्थ हैं।

इसी भाँति अन्तर्वेदना को लिए हुए वह बीमार पड़ गया। समाचार पाकर माता-पिता दौड़े आये, परन्तु अपर्णा को साथ नहीं लाये। कोई यह बात न थी कि अमरनाथ को भी ऐसी ही आशा रही हो, परन्तु उसका हृदय बैठ गया। रोग उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। ऐसे समय में उसे स्वभावतः अपर्णा को देखने की इच्छा होती, परन्तु मुँह खोल कर उस बात को वह नहीं कह सका। माता-पिता भी नहीं समझ सके। केवल दवा, पथ्य और वैद्य-डाक्टर। अन्त में इन सबके हाथ से उसने मुक्ति प्राप्त करली—एक दिन उसकी मृत्यु होगई।

विधवा अपर्णा सन्न रह गई। उसके सम्पूर्ण शरीर में रोमांच हो आया एवं एक भयानक सम्भावना उसके मन में उदय हो आई कि सम्भवतः यह उसी की कामना का फल है। सम्भवतः इतने दिनों से मन-ही-मन वह यही चाहती थी–इतने दिनों बाद अन्तर्यामी ने उसकी कामना पूर्ण की है! बाहर से सुनाई पड़ा, उसके पिता जोर-जोर से रो रहे हैं। यह क्या कोई स्वप्न है? वे कब आये? अपर्णा ने

खिड़की खोल झाँक कर देखा, सचमुच ही राजरानायण बाबू बालकों की भाँति धूलि में लोटते हुए रो रहे थे । पिता की देखादेखी अब वह भी घर के भीतर लोटने लगी एवं आँसुओं से पृथ्वी को भिगोने लगी ।

सन्ध्या होने में अब देर नहीं । पिता ने अपर्णा को छाती से लगाते हुए कहा—बेटी, अपर्णा !

अपर्णा रोती हुई बोली—बाबूजी !

तेरे मदनमोहन ने तुझे बुलाया है बेटी !

चलिए बाबूजी, वहीं चलें ।

तेरा सब काम वहाँ पड़ा हुआ है बेटी !

चलिए बाबूजी ! घर चलें ।

चलो बेटी ! चलो—कहते हुए पिता ने स्नेहपूर्वक पुत्री का मस्तक चूमा, साथ ही सम्पूर्ण दुःख को छाती से पोंछकर मिटा दिया, तत्पश्चात् लड़की का हाथ पकड़ कर उसे दूसरे दिन अपने घर ले आए । वहाँ उँगली से दिखाते हुए बोले—वह रहा बेटी तेरा मन्दिर, वे हैं तेरे मदनमोहन !

आभूषण-हीना अपर्णा विधवा के वेश में कुछ और ही तरह की दिखाई पड़ती है । जैसे श्वेत वस्त्र एवं रूखे बालों से वह और भी अधिक अच्छी लगने लगी है । उसने पिता की बात पर बहुत अधिक विश्वास कर लिया, सोचने लगी—देवता के आह्वान से ही वह फिर लौट आई है । भगवान् के मुख पर शायद इसीलिए हँसी है, मन्दिर में शायद इसीलिए सौगुनी सुरभि है । उसे प्रतीत होने लगा, जैसे वह इस पृथ्वी से बहुत ऊँची जा पहुँची है ।

जो पति अपनी मृत्यु द्वारा उसको पृथ्वी से इतना ऊँचा रख गए हैं, उन मृत-पति को शतबार प्रणाम करते हुए अपर्णा हेतु अक्षय स्वर्ग की कामना की ।

१०

शक्तिनाथ एकाग्रचित्त से प्रतिमा बना रहा था। पूजा करने की अपेक्षा प्रतिमा बनाना ही उसे अधिक अच्छा लगता है। कैसा रूप, कैसे कान और आँखें होनी चाहिए, कौन-सा रङ्ग अधिक खिलेगा—यही उसके आलोच्य विषय थे। किस वस्तु से पूजा करनी चाहिए एवं किस मंत्र का जप करना चाहिए—इन सब छोटे विषयों पर उसका ध्यान ही नहीं था। देवता के सम्बन्ध में वह अपने आपको प्रमोशन (बढ़ावा) देकर सेवक के स्थान से पिता के स्थान पर जा चढ़ा था। फिर भी पिता ने उसे आज्ञा दी—शक्तिनाथ ! आज मुझे ज्वर अधिक है, जमींदार के घर जाकर तुम्हीं पूजा कर आओ।

शक्तिनाथ ने कहा—अभी तो प्रतिमा बना रहा हूँ।

वृद्ध असमर्थ पिता ने क्रोध में भर कर कहा—बच्चों का खेल अभी रहने दो बेटा ! पहिले यह काम समाप्त कर आओ।

पूजा के मंत्र पढ़ने में उसका तनिक भी मन नहीं लगता, फिर भी उठकर जाना ही पड़ा। पिता की आज्ञा से स्नान करने के उपरान्त चद्दर तथा अँगोछा कन्धे पर डाल कर वह देवमंदिर में आ खड़ा हुआ। इससे पहिले भी वह कई बार इस मंदिर में पूजा करने के लिए आया है, परन्तु ऐसी अनोखी बात उसने कभी नहीं देखी। इतनी पुष्प-सुगन्धि, इतना धूप-सुगन्ध का आडम्बर, भोग और नैवैद्य का इतना बाहुल्य ! उसे बड़ी चिन्ता हुई, इतना सब लेकर वह क्या करेगा? किस प्रकार किस-किस की पूजा करेगा? सबसे अधिक आश्चर्य हुआ उसे अपर्णा को देखकर ! यह कौन है, कहाँ से आई है? इतने दिनों तक कहाँ थी?

अपर्णा बोली—तुम भट्टाचार्य जी के लड़के हो?

शक्तिनाथ ने कहा—हाँ!

तो पाँव धोकर पूजा करने बैठो।

पूजा करने बैठा तो शक्तिनाथ प्रारंभ से ही जैसे सब कुछ भूल गया, एक भी मंत्र उसे याद न रहा। इस ओर उसका मन भी नहीं लगता, विश्वास भी नहीं है; केवल यही सोचने लगा—यह कौन है, इसका इतना रूप क्यों है, किसलिए बैठी है आदि। पूजा की पद्धति में उलट फेर हो उठा। विज्ञ-परीक्षक की भाँति पीछे बैठी हुई अपर्णा खूब समझ गई कि कभी घण्टा बजा कर, कभी पुष्प चढ़ा कर, कभी नैवेद्य पर जल छिड़क कर यह अज्ञ पुरोहित केवल पूजा का ढोंग रच रहा है। सदैव से देखते-देखते इन सब बातों को अपर्णा भली-भाँति समझती थी, शक्तिनाथ भला उसे धोखा किस प्रकार दे सकता था? पूजा समाप्त हो जाने पर अपर्णा ने कठोर स्वर में कहा—तुम ब्राह्मण के लड़के हो, पूजा करना भी नहीं जानते?

शक्तिनाथ ने कहा—जानता हूं!

खाक जानते हो?

शक्तिनाथ ने विह्वल की भाँति उसके मुँह की ओर देखा, तत्पश्चात् वह चलने को प्रस्तुत हो गया। अपर्णा ने उसे रोका, कहा महाराज यह सब सामग्री बाँध ले जाओ, परन्तु कल फिर मत आना। तुम्हारे पिता अच्छे हो जाएँगे, तब वे ही आएँगे।

अपर्णा ने स्वयं ही उसकी चादर एवं अँगोछे में सब सामान बाँधकर उसे विदा कर दिया। मंदिर के बाहर आकर शक्तिनाथ बारम्बार काँपने लगा।

इस ओर अपर्णा ने पुनः नए सिरे से पूजा का आयोजन कर, दूसरे ब्राह्मण को बुला कर पूजा सम्पन्न कराई।

११

एक महीना हो गया। आचार्य यदुनाथ जमींदार राजनारायण बाबू से समझा कर कह रहे हैं—आप तो सब कुछ समझते ही हैं, बड़े मंदिर की यह विशाल पूजा मधु भट्टाचार्य के लड़के से किसी प्रकार नहीं हो सकती। राजनारायण बाबू ने समर्थन करते हुए कहा—बहुत दिन पहले अपर्णा ने भी ठीक यही बात कही थी।

आचार्य ने अपने मुखमण्डल को तनिक और भी गंभीर बना कर कहा—सो तो कहा ही होगा। वे ठहरीं साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप। उनसे कुछ अगोचर थोड़े ही है!

जमींदार बाबू का भी ठीक ऐसा ही विश्वास है। आचार्य कहने लगे—पूजा चाहे मैं करूँ अथवा और कोई भी करे। अच्छा आदमी ही होना चाहिए! मधु भट्टाचार्य जब तक जीवित थे, तब तक उन्हीं ने पूजा की, अब उनके पुत्र को ही पुरोहिताई करनी चाहिए, परंतु वह तो आदमी ही नहीं है। वह केवल कपड़े रंग सकता है, खिलौने बना सकता है, पूजा-पाठ करना नहीं जानता।

राजनारायण बाबू ने अनुमति दे दी—पूजा आप ही करें, परंतु एक बार अपर्णा को पूछ देखूँ।

पिता के मुँह से यह बात सुनकर अपर्णा ने सिर हिलाते हुए कहा—ऐसा भी कहीं होता है? ब्राह्मण का लड़का निराश्रय ठहरा। उसे कहाँ विदा कर दिया जाए। वह जैसी जानता है, वैसी ही पूजा करेगा। भगवान् उसी से सन्तुष्ट होंगे।

पुत्री की बात सुनकर पिता को चेत हुआ। बोले—मैं तो यह सोच-समझ ही नहीं सका था। बेटी! तुम्हारा मन्दिर है, तुम्हारी ही पूजा है, तुम जैसा चाहो, वैसा करो। जिसे चाहो, उसी को सौंप दो।

इतना कह कर पिता चले आए। अपर्णा ने शक्तिनाथ को

बुलवा कर उसी को पूजा का भार सौंप दिया। एक बार फटकार के बाद से वह फिर इधर नहीं आया था। इसी बीच उसके पिता की मृत्यु होगई और इस समय वह स्वयं भी रुग्ण है। उसके रूखे चेहरे पर दुःख-शोक के चिह्न देखकर अपर्णा को दया आगई, बोली—तुम पूजा करना, जैसी जानते हो, वैसी ही करना। उसी से भगवान सन्तुष्ट हो जाएंगे।

ऐसे स्नेहपूर्ण स्वर को सुनकर उसमें साहस आ गया। वह सावधान हो, मन लगाकर पूजा करने बैठ गया। पूजा समाप्त हो जाने पर अपर्णा ने अपने हाथ से, जितना वह खा सकता था, उतना बाँधते हुए कहा—बहुत अच्छी पूजा की है। महाराज, क्या तुम अपने हाथ से रसोई बनाकर खाते हो ?

किसी दिन बना लेता हूँ, पर किसी दिन—जब बुखार आ जाता है, नहीं बना पाता।

तुम्हारे क्या और कोई नहीं है ?

नहीं !

शक्तिनाथ के चले जाने पर अपर्णा ने उसके प्रति कहा—बेचारा। तदुपरान्त वह देवता के समक्ष हाथ जोड़कर उसकी ओर से प्रार्थना करती हुई बोली—भगवान्! तुम इसकी पूजा से सन्तुष्ट हो जाना; अभी लड़का ही है, इसका दोष-अपराध न मानना।

उसी दिन से अपर्णा प्रतिदिन दासी के द्वारा खोज-खबर लेती रहती—वह क्या खाता है, क्या करता है, उसे किस वस्तु की आवश्यकता है। उस निराश्रय ब्राह्मण कुमार को अज्ञात रूप से आश्रय देकर उसका सम्पूर्ण भार स्वेच्छा से अपने ऊपर ले लिया उसने और उसी दिन से इन दोनों किशोर एवं किशोरी ने अपनी भ स्नेह तथा भूल-भ्रान्ति सब को एकत्र कर, इस मन्दिर का आश्रय जीवन के शेष कार्यों को अपने से प्रथक्-पराया कर डाला।

नाथ पूजा करता है, अपर्णा बता दिया करती है। शक्तिनाथ स्तोत्र पढ़ता है, अपर्णा मन-ही-मन उसका सहज अर्थ देवता को समझा दिया करती है। शक्तिनाथ सुगन्ध-पुष्प हाथ से उठाता है, अपर्णा उँगली से दिखा-दिखाकर बताती जाती है—महाराज! आज इस प्रकार सिंहासन सजाओ तो देखें, बड़ा अच्छा लगेगा। इसी प्रकार इस विशाल मन्दिर का बृहद् कार्य चलने लगा। देख-सुनकर आचार्य ने कहा—बच्चों का खिलवाड़ हो रहा है।

वृद्ध राजनारायण बोले—किसी भी प्रकार हो, लड़की अपनी अवस्था को भूली रहे तो अच्छा है।

१२

जिस प्रकार थियेटर के स्टेज पर वन-पर्वत, आँधी-मेह आदि क्षण में अदृश्य होकर उनके स्थान पर एक विशाल राजप्रासाद कहीं से आ जुटता है तथा लोगों की सुख-सम्पत्ति के बीच दुःख-दैन्य का चिह्न तक विलुप्त हो जाता है, शक्तिनाथ के जीवन में भी मानो वैसा ही होगया है। पहले तो उसे ज्ञात ही नहीं हुआ कि वह जाग रहा था और अब सोकर सुख-स्वप्न देख रहा है, अथवा निद्रा में दुःस्वप्न देख रहा था और अब अचानक जाग उठा है। तो भी, उसके पहले के वे विक्षिप्त खिलौने बीच-बीच में इस बात की याद उसे दिलाया करते हैं कि इस दायित्वहीन देव-सेवा की सोने की साँकल ने उसके सम्पूर्ण शरीर को जकड़ कर बाँध लिया है और वह साँकल रह-रह कर झनझना उठती है। वह अपने स्वर्गवासी पिता की याद किया करता तथा अपनी स्वाधीनता की बात सोचा करता। ऐसा लगता, जैसे वह बिक गया है, अपर्णा ने उसे खरीद लिया है। इस प्रकार अपर्णा के स्नेह ने क्रमशः मोह की भाँति उसे धीरे-धीरे आच्छन्न कर लिया।

अचानक एक दिन शक्तिनाथ का ममेरा भाई वहाँ आ पहुँचा। उसकी बहिन का विवाह था। मामा कलकत्ते में रहते हैं। अभी समय अच्छा है, अतः सुख के दिनों में उन्हें भानजे की याद हो आई है। जाना ही पड़ेगा। यह बात शक्तिनाथ को बहुत अच्छी लगी कि उसे कलकत्ते जाना पड़ेगा। रात भर वह भाई के पास बैठा हुआ कलकत्ते के आराम की कहानी, शोभा की चर्चा एवं समृद्धि का वर्णन सुनता रहा तथा सुनते-सुनते मुग्ध हो गया। दूसरे दिन उसकी इच्छा मन्दिर जाने की नहीं हुई। देर होते देख कर अपर्णा ने उसे बुलवाया। शक्तिनाथ ने जाकर कहा—आज कलकत्ते जाऊँगा मामा ने बुलाया है।

इतना कह कर वह तनिक संकुचित होकर खड़ा हो गया। अपर्णा कुछ देर मौन रही, तदुपरान्त बोली—कब लौट कर आ जाओगे ?

शक्तिनाथ ने कुछ डरते हुए कहा—मामा कह देंगे, तभी लौट आऊँगा।

अपर्णा ने फिर कुछ नहीं पूछा। फिर वही यदुनाथ आचार्य आकर पूजा करने लगे। फिर उसी प्रकार अपर्णा पूजा देखने लगी, परन्तु उसे कुछ कहने की आवश्यकता न हुई, और इच्छा भी नहीं थी।

कलकत्ते जाकर विविध प्रकार के वैचित्र्य एवं आनन्द में दिन बीतने पर भी शक्तिनाथ का मन कुछ दिन बाद ही घर लौटने के लिए तड़फड़ाने लगा। लम्बे और आलसी दिन अब उससे नहीं काटे जाते। रात्रि में वह स्वप्न देखने लगा—अपर्णा उसे बुला रही है और उत्तर न पाकर क्रुद्ध हो रही है। अन्ततः एक दिन उसने अपने मामा से कहा—मैं घर जाऊँगा।

मामा ने मना करते हुए कहा—वहाँ जंगल में जाकर क्या करोगे ? यहीं रह कर पढ़ना-लिखना सीखो। मैं तुम्हारी नौकरी लगा दूँगा।

शक्तिनाथ सिर हिला कर चुप रह गया। मामा बोले—तो जाओ।

बड़ी बहू ने शक्तिनाथ को अपने पास बुला कर कहा—लाला जी! क्या कल घर चले ही जाओगे?

शक्तिनाथ ने उत्तर दिया—हाँ, जाऊँगा।

अपर्णा के लिए मन तिलमिला रहा है न?

शक्तिनाथ बोला—हाँ

वे तुम्हारा खूब सत्कार करती हैं न?

शक्तिनाथ ने मस्तक झुकाते हुए कहा—खूब सत्कार करती हैं।

बड़ी बहू मन-ही-मन मुस्कुराई, अपर्णा की बातें उसने पहिले ही सुन रक्खी थीं और वे स्वयं शक्तिनाथ ने ही कही थीं। बोलीं—तो लालाजी ये दो वस्तुएँ लेते जाओ, उन्हें दे देना, वे और भी अधिक प्यार करेंगी। इतना कह कर उन्होंने एक शीशी की डाट खोल कर थोड़ा सा 'दिलखुश' सेण्ट उसके शरीर पर छिड़क दिया। उसकी सुगन्धि से शक्तिनाथ पुलकित हो उठा एवं दोनों शीशियों को चादर के छोर में बाँध कर दूसरे ही दिन घर लौट आया।

१३

शक्तिनाथ ने मन्दिर में प्रवेश किया। पूजा समाप्त हो चुकी थी। चादर में सेण्ट की दो शीशियाँ बँधी हुई हैं, परन्तु इन कई दिनों में अपर्णा उसके समीप से इतनी दूर हट गई है कि उन्हें देने की हिम्मत नहीं होती। वह मुँह खोल कर किसी प्रकार कह ही नहीं सका कि इन्हें मैं बड़ी साध से तुम्हारे लिए कलकत्ते से लाया हूँ। सुगन्ध से तुम्हारे देवता तृप्त होते हैं, तुम भी हो जाओगी। अस्तु,

त दिन इसी प्रकार निकल गए। प्रतिदिन वह उन शीशियों को दर में बाँध कर लाता और प्रतिदिन लौटा ले जाता, फिर उन्हें सरे दिन के लिए बड़े यत्न से उठा कर रख देता। पहले की भाँति दि एक दिन भी अपर्णा उसे बुला कर कोई बात पूछती तो सम्भवतः वह अपना उपहार उसे दे बैठता, परन्तु वैसा अवसर फिर आया ही नहीं।

आज दो दिन से उसे ज्वर आ रहा है, फिर भी वह डरते-डरते पूजा करने के लिए आ जाता है। किसी अज्ञात आशंका के कारण वह अपने कष्ट की बात कह भी नहीं पाता। परन्तु अपर्णा ने पता लगा लिया कि शक्तिनाथ ने दो दिन से कुछ खाया नहीं है, फिर भी पूजा करने के लिए आता है। अपर्णा ने पूछा—महाराज ! तुमने दो दिन से कुछ नहीं खाया ?

शक्तिनाथ ने सूखे हुए मुँह से कहा प्रतिदिन रात को ज्वर आ जाता है।

ज्वर आता है ? तो फिर नहा-धोकर पूजा करने के लिए क्यों आते हो ? तुमने यह बात कही क्यों नहीं ?

शक्तिनाथ की आँखों में आँसू भर आए। पल भर में वह आ ातें भूल गया तथा चादर की गाँठ खोल कर दोनों शीशियां ालता हुआ बोला—यह तुम्हारे लिए लाया हूँ।

मेरे लिए !

हाँ, तुम्हें सुगन्धि पसन्द है न ?

जिस प्रकार गरम दूध थोड़ी-सी आग की गरमी पाते ही ले देकर खौलने लगता है, अपर्णा के सम्पूर्ण शरीर का र प्रकार खौलने लगा। शीशियों को देखते ही वह पहिचान ग उसने गंभीर स्वर में कहा—'दो'। और हाथ में लेकर, म

बाहर, जहाँ पूजा से उतारे हुए फूल पड़े सूख रहे थे, दोनों शीशियाँ फेंक दीं। आतङ्क के कारण शक्तिनाथ की छाती का खून जम गया। तभी अपर्णा ने कठोर स्वर में कहा—महाराज ! तुम्हारे भीतर-ही-भीतर इतना भरा हुआ है ? अब तुम मेरे सामने मत आना, मंदिर की छाया को भी मत झाँकना। इसके पश्चात् अपर्णा ने अपनी चम्पच-उङ्गली से बाहर का रास्ता दिखाते हुए कहा—जाओ...

× × × ×

आज शक्तिनाथ को गए तीन दिन हो गए। यदुनाथ आचार्य फिर पूजा करने लगे, अपर्णा म्लान मुख से फिर पूजा देखने लगी—मानो यह किसी और की पूजा कोई दूसरा ही आकर समाप्त कर रहा है। पूजा समाप्त कर, अँगोछे में नैवेद्य बाँधते-बाँधते आचार्य महाशय ने गहरी साँस लेते हुए कहा—लड़का चिकित्सा के बिना मर गया।

आचार्य के मुँह की ओर देख कर अपर्णा ने पूछा—कौन मर गया ?

तुमने नहीं सुना क्या ? कई दिन ज्वर में पड़े रह कर वही अपना मधु भट्टाचार्य का लड़का आज सवेरे मर गया।

अपर्णा इसके बाद भी उनके मुँह की ओर देखती रही। आचार्य ने द्वार के बाहर आकर कहा—आजकल पाप के फलों से मृत्यु हो रही हैं। देवता के साथ क्या दिल्लगी चल सकती है, बेटी ?

आचार्य चले गए। अपर्णा द्वार बंद करके, पृथ्वी पर मस्तक पटक-पटक रोने और रो-रो कर हजार बार पूछने लगी—भगवन् यह किसके पाप से हुआ ?

बहुत देर पश्चात् वह उठकर बैठ गई और आँखें पोंछ कर

उन सूखे हुए फूलों के भीतर से उसने उस स्नेह के दान को उठा कर अपने मस्तक से लगा लिया। तदुपरान्त मंदिर के भीतर प्रवेश करके उसे देवता के चरणों के समीप रखती हुई बोली—भगवन् ! मैं जिसे नहीं ले सकी, उसे तुम ले लो। मैंने अपने हाथों से कभी पूजा नहीं की, आज कर रही हूँ। तुम स्वीकार करो, तृप्त हो जाओ, मेरी और कोई कामना नहीं है।

हरिलक्ष्मी

१

जिसे लेकर इस कहानी की उत्पत्ति हुई, वह बात छोटी-सी है, तो भी इस छोटी-सी बात का अवलम्बन कर गृहलक्ष्मी के जीवन में जो कुछ घटा, वह क्षुद्र भी नहीं है, तुच्छ भी नहीं है। संसार में ऐसा ही होता है। वेलपुर के दो शरीक (साझी), शान्त नदी तट पर जहाज के पास छोटी डोंगी की भाँति एक दूसरे के पास निरुपद्रव बँधे हुए थे। अकस्मात कहीं से एक तूफान ने आकर लहरों को उठाते हुए जहाज का रस्सा काट दिया, लंगर टूटते ही एक मुहूर्त्त में छोटी-सी डोंगी किस प्रकार विध्वस्त हो गई, उसका हिसाब नहीं पाया जा सका।

वेलपुर तालुके का कोई अधिक महत्व नहीं है। उठते-बैठते रैयत को कष्ट पहुँचाते हुए भी हज़ार-बारह सौ से ऊपर की वसूली नहीं होती, परन्तु साढ़े पन्द्रह आने के भागीदार शिवचरन के समीप दो पैसे के भागीदार विपिनविहारी को यदि जहाज के साथ डोंगी की तुलना की जाए तो शायद अतिशयोक्ति का अपराध नहीं होगा।

दूर होते हुए भी जाति एवं छः-सात पीढ़ी पहिले दोनों का निवास एक ही था, परन्तु आज एक व्यक्ति की तिमंजली अट्टालिका गाँव के माथे पर चढ़ी हुई है एवं दूसरे का जीर्ण गृह दिन प्रतिदिन भूमि शय्या ग्रहण करने की ओर मनोनिवेश (इच्छा) कर रहा है।

तो भी इसी प्रकार दिन कट रहे थे एवं इसी प्रकार बाकी के दिन भी विपिन के सुख-दुःख में निश्चित रूप से कट जाते; परंतु जिस मेघखण्ड द्वारा असमय में ही तूफान ने उठकर सब कुछ उलट-पुलट दिया, उसका रूप इस प्रकार है—

साढ़े पन्द्रह आने के भागीदार शिवचरण की पत्नी की अचानक मृत्यु होजाने पर भाई-बन्धुओं ने कहा, चालीस-इकतालीस भी कोई अधिक आयु होती है? तुम दुबारा विवाह कर लो। शत्रु-पक्ष सुन कर हँसने लगा, चालीस की आयु तो शिवचरन की चालीस वर्ष पहले ही बाद हो चुकी है अर्थात् इसमें कोई भी सचाई नहीं है। असल बात यह है, बड़े बाबू का दिव्य गौर वर्ण नाजुक शरीर है, सुपुष्ट मुख-मण्डल के ऊपर रोम का चिह्नमात्र भी नहीं है। यथा समय दाढ़ी-मूँछ उत्पन्न न होने से कुछ असुविधा हो सकती है, परन्तु सुविधा भी बहुत होती हैं। आयु का अंदाज लगाने के बारे में जो लोग नीचे की ओर नहीं जाना चाहते, ऊपर की ओर जाकर वे लोग किस अङ्क के कोठे में जाकर उसे भरते हुए खड़े होंगे, उसे स्वयं भी निश्चत नहीं कर पाते। खैर, जो भी हो, धनी पुरुष का विवाह किसी भी देश में आयु के पीछे होने से रुकता नहीं, बगाल देश में तो बिल्कुल ही नहीं। महीना-डेढ़ महीना तो शोक-ताप और ना, ना करते हुए बीत गया, तदुपरान्त हरिलक्ष्मी से विवाह कर शिवचरन उसे घर में ले आया। शून्य-गृह एक दिन में ही षोडश कलाओं से परिपूर्ण हो उठा। कारण शत्रुपक्ष चाहे कुछ क्यों न कहे, प्रजापति (विवाह के देवता) सच-मुच ही उसके ऊपर इस बार अत्यन्त प्रसन्न थे, इसे मानना ही होगा। पात्र (वर) की तुलना में नव-वधू की आय की ओर देखा जाए तो

वह एकदम असंगत नहीं थी। आयु चाहे अधिक हो, तो भी वह सुन्दरी थी, इस बात को सभी ने स्वीकार किया। चराचर में बड़ी आयु की लड़कियों की अपेक्षा भी लक्ष्मी की आयु कुछ अधिक हो गई थी, शायद उन्नीस से कम नहीं होगी। उसके पिता आधुनिक सभ्यता के लोग हैं, यत्नपूर्वक लड़की को अधिक आयु तक शिक्षा दिलवा कर मैट्रिक पास कराया था। उनकी इच्छा तो कुछ और ही थी, परन्तु व्यवसाय में फेल हो जाने से अचानक दरिद्र हो जाने के कारण ही इस 'सुपात्र' को अपनी कन्या अर्पित करने के लिए वाध्य हुए थे।

लक्ष्मी शहर की लड़की थी, पति को दो-चार दिन में ही पहचान लिया। उसे कठिनाई यही हुई कि आत्मीय आश्रित बहु परिजन परिवृत वृहद् परिवार के बीच भी वह हृदय खोलकर किसी के साथ मिल जुल नहीं सकती थी। उधर शिवचरन के प्रयत्नों का कोई अन्त न रहा। रूप-गुण सम्पन्न हरिलक्ष्मी को उसके जैसे कदम अमूल्यनिधि के रूप में प्राप्त किया था। घर के आत्मीय स्त्री-पुरुषों का समूह कहां-किस प्रकार उसके मन को सन्तुष्ट रक्खा जा सके, इसे किसी प्रकार नहीं जान सका। एक बात वह प्रायः ही सुन पाती—इस बार मँझली बहू का मुँह काला हो गया। क्या रूप, क्या गुण, क्या विद्या-बुद्धि में अब आकर उनका गर्व नष्ट हुआ है।

परन्तु इतने से ही सुविधा नहीं हुई, दो-एक महीने में ही लक्ष्मी बीमार पड़ गई। इस बीमारी में ही एक दिन मँझली बहू से साक्षात्कार हुआ। वह विपिन की स्त्री, बड़े घर की नववधू के ज्वर का समाचार सुनकर देखने के लिए आई थी। आयु में दो तीन वर्ष अधिक जान पड़ती थी; वह भी सुन्दरी है इसे लक्ष्मी ने मन-ही-मन स्वीकार किया; परन्तु इस आयु में ही दारिद्र के भीषण थपेड़ों के आघात उसके सर्वांग में सुस्पष्ट हो रहे थे। साथ में लगभग छः वर्ष की आयु का बालक था, वह भी दुर्बल था। लक्ष्मी अपनी शैया के एक ओर

यत्नपूर्वक बैठने के लिए स्थान देती हुई क्षणभर तक चुपचाप ...
देखती रही। हाथ में कुछ सोने की चूड़ियों को छोड़कर और कोई
आभूषण नहीं था, पहनावे में कुछ मैली-सी एक रंगीन बाड़ की धोती
थी; जान पड़ता था, उसके पति की होगी। गँवई-गाँव की प्रथानु-
सार बालक बिल्कुल नंगा नहीं था, उसकी कमर में भी एक छींट का
छोटा-सा कपड़ा बँध रहा था।

लक्ष्मी उसके हाथों को पकड़कर खींचती हुई धीरे-धीरे बोली—
भाग्य से बुखार आ गया, तभी तो आपको देख सकी; परन्तु रिश्ते में
मैं जिठानी होती हूँ मँझली बहू। सुनती हूँ, मँझले देवर इनकी अपेक्षा
बहुत छोटे हैं।

मँझली बहू ने मुस्कुराते हुए कहा—जो रिश्ते में छोटी हो उसे
क्या 'आप' कहा जाता है?

लक्ष्मी ने कहा—पहिले दिन जो कह दिया सो कह दिया
अन्यथा 'आप' कहने वाली मैं नहीं हूँ, परन्तु इसके कारण तुम
मुझे 'दीदी' कहकर नहीं पुकारोगी। उसे मैं नहीं सह सकूँगी। मे...
नाम लक्ष्मी है।

मझली बहू ने कहा—नाम बताने की जरूरत नहीं है दी...
आपको देखकर ही मालूम हो जाता है। और मेरा नाम...क्या ...
किसने हँसी उड़ाते हुए कमला रख दिया है। यह कहकर वह ...
से तनिक हँस गई।

हरिलक्ष्मी की इच्छा हुई, वह भी प्रतिवाद करती हुई...
तुम्हारी ओर देखने भर से तुम्हारा नाम समझ में आ जाता है...
नक़ल जैसा सुनाई पड़ने के भय से कह नहीं सकी। बोली, मे...
का अर्थ एक है; परन्तु मँझली वहू, मैं तुम को 'तुम' कह सकी...
तुम ऐसा नहीं कर सकीं।

मँझली बहू ने हँसते हुए उत्तर दिया—चट से ऐसा हो...

दीदी ! एक आयु को छोड़ कर आप सभी बातों में मुझ से बड़ी हैं। दो-चार दिन बीतने भी दो—आवश्यकता होने पर बदलने में कितनी देर लगती है ?

हरिलक्ष्मी के मुख पर सहसा इसका जवाब नहीं आ सका। वह मन-ही-मन समझ गई, यह स्त्री पहिले दिन के परिचय को ही घनिष्ठता में परिणित नहीं करना चाहती; परन्तु कुछ कहने के पूर्व ही मँझली बहू ने उठने का उपक्रम करते हुए कहा—अब तो उठती हूँ दीदी, कल फिर...

लक्ष्मी आश्चर्यचकित होकर बोली—अभी कैसे चली जाओगी, थोड़ा बैठो।

मँझली बहू ने कहा—आपके हुक्म देने पर तो बैठना ही होगा, परन्तु आज जाऊँ दीदी, उनके आने का समय होगया है। यह कहकर वह उठ खड़ी हुई एवं लड़के का हाथ पकड़कर जाने से पहिले मुस्कुराती हुई बोली— आऊंगी दीदी ! कल कुछ जल्दी ही आऊँगी, क्यों ? कह कर धीरे-धीरे बाहर निकल गई।

विपिन की स्त्री के चले जाने पर हरिलक्ष्मी उस ओर देखती हुई चुप पड़ी रही। इस समय ज्वर नहीं था, परन्तु ग्लानि थी। तथापि कुछ देर के लिए वह सब कुछ भूल गई। इतने दिनों में गाँव भर की कितनी ही बहू-बेटियाँ आई हैं, उनकी गणना नहीं, परन्तु बगलवाले इस दरिद्र घर की वधू के साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती। वे बिना बुलाए आईं और उठना ही नहीं चाहा। और बैठने के लिए कहा तो बात भी नहीं की। उनकी कैसी प्रगल्भता, कैसी वाचालता, मनोरंजन करने का कैसा लज्जाजनक प्रयास था। बोझिल मन उसके बीच-बीच में विद्रोही हो उठा, परन्तु इसी बीच अचानक कौन आकर उसकी रोग शय्या के समीप कुछ क्षणों के लिए अपना परिचय दे गई। उसके पिता के घर (मायके) की बात पूछने

समय ही नहीं था, परन्तु न पूछने पर भी लक्ष्मी ने कैसे जाना,
अनुभव किया—उसकी भाँति वह किसी भी तरह कलकत्ते की
ड़की नहीं है। गँवई-गाँव में लिखना-पढ़ना जानती है, कह कर
विपिन की स्त्री की एक प्रसिद्धि है। लक्ष्मी ने सोचा, बहुत संभव है
ह रामायण और महाभारत का स-स्वर पाठ कर सकती हो, परन्तु
इससे अधिक कुछ नहीं है। जिस पिता ने विपिन जैसे दीन-दुखी के
हाथों में अपनी लड़की सौंप दी है, उसने किसी भी प्रकार मास्टर
रख कर अथवा स्कूल में पढ़ाकर पास कराने के पश्चात् कन्या को
दान नहीं किया होगा। उज्ज्वल श्यामवर्ण—गोरा नहीं कहा जा
सकता; परन्तु रूप की बात छोड़ देने पर भी शिक्षा, संसर्ग, अवस्था,
किसी प्रकार भी तो विपिन की स्त्री उसके बराबर खड़ी नहीं हो
सकती, परन्तु एक बात से लक्ष्मी अपने को मन में जैसे छोटा अनुभव
करने लगी। उसका कण्ठस्वर—वह जैसे संगीत के समान है, और
बोलने का ढँग तो जैसे मधु से भरा हुआ है। तनिक भी अटकाव नहीं,
बातों को जैसे वह घर से ही कण्ठस्थ करके आई हो, ऐसी सरल।
परन्तु सब की अपेक्षा जिस वस्तु ने उसे विशेष रूप से बींधा, वह उस
स्त्री की दूरी थी। वह दरिद्र घर की वहू है, इसे मुँह से न कह कर
इस प्रकार प्रकट कर गई, जैसे यह उसके लिए स्वाभाविक है, जैसे
इसे छोड़कर और कुछ उसे किसी भी प्रकार शोभा नहीं देगा। दरि
है, किन्तु कङ्गाल नहीं। एक भले परिवार की वहू, एक दूसरे घर
बहू की बीमारी में उसकी खोज-खबर लेने आई है—इसके अतिरि
लेशमात्र भी अन्य कोई उद्देश्य नहीं है। सन्ध्या हो जाने पर जब
देखने के लिए आए तब हरिलक्ष्मी ने बहुत-सी बातों के बाद कह
आज उस घर की मँझली बहूरानी को देखा।

शिवचरन ने कहा—किसे ? विपिन की बहू को ?

लक्ष्मी ने कहा—हाँ ! मेरा भाग्य अच्छा था, इतने दिनों

मुझे स्वयं ही देखने आई, परंतु पाँच मिनिट से अधिक बैठ नहीं सकी। 'काम है' कह कर उठ गई।

शिवचरण ने कहा—काम ? अरे, उन लोगों के घर दास-दासी थोड़े ही हैं ? बर्त्तन माँजने से लेकर हाँडी चढ़ाने तक—कोई तुम्हारी तरह सो-बैठ कर शरीर को आराम तो देले, तब देखूँ ? एक घण्टी पानी तक भी तुम्हें अपने हाथ से भर कर नहीं पीना पड़ता।

अपने बारे में ऐसा मन्तव्य हरिलक्ष्मी को अत्यन्त खराब लगा, परंतु बात तो उसकी बड़ाई करने के लिए ही कही गई थी, यह जान कर वह रुष्ट नहीं हुई, बोली—सुनती हूँ कि मँझली बहू को बड़ा घमंड है, घर छोड़ कर कहीं जाती ही नहीं।

शिवचरन ने कहा जाएगी कहाँ ? हाथ में दो चूड़ियों के तिरिक्त और राख भी नहीं है।—लज्जा से मुँह भी नहीं दिखा ी।

हरिलक्ष्मी तनिक मुस्कुराती हुई बोली—लज्जा किसकी ? देश के लोग क्या उसके शरीर पर जड़ाऊ गहने देखने के लिए व्याकुल हैं, जो न देख पाने पर छी: छी: कर उठेंगे ?

शिवचरन ने कहा—जड़ाऊ गहने मैंने जो तुम्हें दिए हैं, किसी बेटे ने वे आँखों से भी देखे हैं ? स्त्री को आज तक दो चूड़ियों के अतिरिक्त और कुछ भी गढ़वा कर नहीं दे सका। बाबू ! रुपये का बड़ा जोर है ! जूता मारूँगा और...

हरिलक्ष्मी खिन्न तथा अत्यन्त लज्जित होकर बोली—छि: छि: यह सब तुम क्यों कहते हो ?

शिवचरन ने कहा—नहीं, नहीं, हमारे पास दबी-छिपी बात नहीं है। जो कहूँगा, वह स्पष्ट बात होगी।

हरिलक्ष्मी बिना उत्तर दिए आँख बन्द करके सो गई। बोलने

के लिए था ही क्या ? ये लोग कमजोर मनुष्य के विरुद्ध अत्यन्त असभ्य बात कठोर और कर्कश स्वर में उच्चारण करना ही एकमात्र स्पष्टवादिता समझते हैं। शिवचरन शान्त नहीं हुआ, कहने लगा—ब्याह पर जो पचास रुपये उधार ले गया था, वे सूद और असल मिलाकर सात-आठ सौ हो गए हैं, उसका भी ख्याल है ? गरीब एक कोने में पड़ा है तो पड़ा रहे, इच्छा करते ही कान पकड़कर दूर कर सकता हूँ। दासी के योग्य भी नहीं है—मेरी स्त्री के समीप घमण्ड करती है !

हरिलक्ष्मी करवट बदल कर सो गई। बीमारी के ऊपर विरक्ति और लज्जा से उसका सम्पूर्ण शरीर जैसे कंपकंपाने लगा।

दूसरे दिन दोपहर के समय घर में कोमल शब्द सुनकर आँख खोलकर देखा, विपिन की स्त्री बाहर निकल कर जा रही थी। पुकार कर कहा—मँझली बहू, चली जा रही हो क्या ?

मँझली बहू शरमाती हुई लौट आई और बोली—मैंने सोचा, आप सो रही हैं। आज कैसी हैं, दीदी ?

हरिलक्ष्मी ने कहा—आज बहुत अच्छी हूँ। क्यों, अपने लड़के को नहीं लाईं ?

मँझली बहू बोली—आज वह अचानक ही सो गया, दीदी !

अचानक सो गया इसका क्या मतलब ?

आदत खराब हो जाएगी इसलिए मैं उसे दिन में सोने नहीं देती, दीदी।

हरिलक्ष्मी ने पूछा—धूप में ऊधम करता हुआ नहीं घूमता फिरता ?

मँझली बहू ने कहा—करता क्यों नहीं, परन्तु सोने की अपेक्षा वह अधिक अच्छा है।

तुम स्वयं शायद कभी नहीं सोतीं ?

मँझली वहू मुस्कुराती हुई गर्दन हिलाकर बोली—नहीं।

हरिलक्ष्मी ने सोचा, स्त्रियों के स्वभाव के अनुसार इस बार शायद वह अपनी व्यस्तता की लम्बी सूची सुनाने बैठ जाएगी, परन्तु उसने वैसा कुछ नहीं किया। इसके पश्चात् दूसरी बातें चलने लगीं। बातों ही बातों में हरिलक्ष्मी ने अपने पिता के घर की बात, भाई-बहनों की बात, मास्टर महाशय की बात, स्कूल की बात, यही क्यों अपने मैट्रिक पास करने की बात भी कहानी की तरह कह डाली। बहुत देर बाद जब होश आया, तब स्पष्टरूप से देखा, श्रोता के हिसाब से मँझली बहू कितनी भी भली क्यों न हो, वक्ता के हिसाब से एक-दम तुच्छ है। अपनी बात उसने प्रायः कुछ भी नहीं कही। पहिले तो लक्ष्मी को लज्जा-सी लगी, परन्तु तभी मनमें सोचा, मेरे पास गप-शप करने योग्य उसके पास है ही क्या! परन्तु कल जिस प्रकार इस बहू के विरुद्ध उसका मन अप्रसन्न हो उठा था, आज उसी प्रकार कुछ अधिक तृप्त-सा अनुभव होने लगा।

दीवाल की मूल्यवान घड़ी से विभिन्न प्रकार के वाद्ययन्त्रों की आवाज की भाँति तीन बजे। मँझली बहू ने उठकर खड़े होते हुए नम्रतापूर्वक कहा—दीदी, आज तो अब जाऊँ ?

लक्ष्मी ने कौतूहलपूर्वक कहा—तुम्हें समझती हूँ, बहिन, तीन बजे तक ही छुट्टी रहती है ? देवर क्या घड़ी की सुइयों को देखकर ही घर में घुसते हैं ?

मँझली बहू ने कहा—आज तो वे घर पर ही हैं।

आज फिर जल्दी क्यों, थोड़ा और बैठो न ?

मँझली वहू बैठी नहीं, परन्तु जाने के लिए भी नहीं बढ़ी। धीरे-धीरे बोली—दीदी, आपकी कैसी शिक्षा-दीक्षा हुई, कैसी पढ़ी लिखी हैं, और मैं ठहरी गँवई-गाँव की...

तुम्हारे पिता का घर शायद देहात में है ?

हाँ दीदी, वे बिल्कुल देहात में रहते हैं। न जाने कल क्या-से-क्या कह गई होऊँ, परन्तु असम्मान करने के लिए नहीं। मुझे आप जो भी शपथ खाने के किए कहे, दीदी...

हरिलक्ष्मी ने चकित होकर कहा—यह क्या मँझली बहू, तुमने तो मुझसे ऐसी कोई भी बात नहीं कही !

मँझली बहू ने इस बात के प्रत्युत्तर में और कोई बात नहीं कही; परतु 'आऊँगी' कह कर पुनः विदा लेकर जब वह धीरे-धीरे बाहर गई, उस समय उसका कण्ठस्वर जैसे अचानक कुछ और ही तरह का सुनाई पड़ा।

रात में शिवचरन ने जब कमरे में प्रवेश किया, उस समय हरिलक्ष्मी चुपचाप सो रही थी, मंझली बहू की बातों का उस समय कोई स्मरण नहीं था। शरीर अपेक्षाकृत स्वस्थ, मन भी शान्त और प्रसन्न था।

शिवचरन ने पूछा - कैसी हो बड़ी बहू ?

लक्ष्मी ने उठकर बैठते हुए कहा—अच्छी हूँ।

शिवचरन ने कहा—सबेरे की बात जानती हो ? बच्चू को बुलाकर सबके सामने इस प्रकार डाट दिया कि जन्म भर नहीं भूलेगा। मैं बेलपुर का शिवचरन हूँ। हाँ !

हरिलक्ष्मी ने डरते हुए कहा—किसे जी ?

शिवचरन ने कहा—विपिन को। बुला कर कह दिया, तुम्हारी स्त्री हमारी स्त्री के सामने शान दिखा कर अपमान कर जाए, इतनी बड़ी हिमाकत ! पाजी, नालायक, ओछे लोगों की लड़की। उसके सिर के बाल मुँड़वा कर गधे पर चढ़ा कर बाहर लवा सकता हूँ, जानता है

हरिलक्ष्मी का रोग-क्लिष्ट चेहरा एकदम फक रह गया—क्या कहते हो जी ?

शिवचरण अपनी छाती को ठोंकते हुए घमण्डपूर्वक कहने लगा—इस गाँव का जज कहो, मजिस्ट्रेट कहो, और दरोगा पुलिस कहो, सब कुछ यही बन्दा है ! यही बन्दा ! मारने की लकड़ी, जिलाने की लकड़ी इसी के हाथ में है। मैं लादू चौधरी का लड़का हूँ। तुम कहो, कल ही यदि विपिन की वहू आकर तुम्हारे पाँव न दबाए तो मैं...

विपिन की बहू को सब लोगों के सामने अपमानित और लाञ्छित करने का विवरण तथा व्याख्या में लादू चौधरी के लड़के ने अपशब्द एवं कुशब्द कहने में कोई कसर नहीं छोड़ी। और उसी के सामने निर्निमेष नेत्रों से देखती हुई हरिलक्ष्मी का मन कहने लगा, धरती ! फट जाओ !

२

दूसरी बार की स्त्री के शरीर की रक्षा के निमित्त शिवचरण केवल अपने शरीर के अतिरिक्त और सब कुछ दे सकता है। हरिलक्ष्मी का वह शरीर बेलपुर में आरोग्य नहीं होना चाहता। डाक्टर ने परामर्श दिया जलवायु वदलने का। शिवचरण ने अपनी साढ़े पन्द्रह आने की हैसियत के अनुसार जलवायु वदलने जाने के सम्बन्ध में तैयारियाँ करना आरंभ कर दिया। यात्रा के शुभ दिन में गाँव के लोग टूट पड़े। आया नहीं तो केवल विपिन और उसकी स्त्री। वाहर शिवचरण न कहने योग्य वातें कहने लगा एवं भीतर बड़ी बुआ उत्तप्त हो उठीं। वाहर भी आग लगाने वाले लोगों की कमी नहीं थी, अन्त:पुर में भी उसी प्रकार बुआ जी के चीत्कार का विस्तार बढ़ाने के लिए यथेष्ट स्त्रियाँ जुट गईं। कुछ नहीं वोली तो केवल हरिलक्ष्मी ही। मँझली

बहू के प्रति उसके क्षोभ और अभिमान की मात्रा किसी की भी अपेक्षा कम नहीं थीं। वह मन-ही-मन कहने लगी, मेरे बर्बर पति ने कितना भी अन्याय क्यों न किया हो, उसने स्वयं तो कुछ नहीं किया, परंतु घर की और बाहर की सभी स्त्रियाँ आज चिल्ला रहीं थीं, उनके साथ किसी भी प्रकार अपना कण्ठस्वर मिलाने में उसे घृणा अनुभव हुई। जाने के मार्ग पर पालकी के दरवाजे में झाँक कर लक्ष्मी ने उत्सुक नेत्रों से विपिन के जीर्णगृह की खिड़की की ओर देखा, परंतु किसी की छाया भी उसकी आँखों में नहीं पड़ी।

काशी में मकान ठीक कर लिया गया था, वहाँ की जलवायु के गुण से नष्ट स्वास्थ्य के पुन: प्राप्त करने में लक्ष्मी को विलम्ब नहीं हुआ। चार महीने बाद जब वह फिर लौट आई, उसके शरीर की कान्ति देख कर स्त्रियों की गुप्त-ईर्ष्या की कोई सीमा न रही।

हेमन्त ऋतु आने ही वाली है। दोपहर के समय मँझली बहू चिर-रुग्ण पति के समीप एक ऊनी गुलूबंद बुन रही है, पास ही बैठा हुआ लड़का खेल रहा है, वह देखते ही कलरव करता हुआ उठ खड़ा हुआ—माँ, ताईजी!

माँ ने अपने हाथ का काम हटाकर झटपट नमस्कार कर, एक आसन बिछा दिया, मुस्कुराते हुए पूछा—शरीर स्वस्थ हो गया, दीदी?

लक्ष्मी ने कहा—हाँ, हो गया; परंतु नहीं भी हो सकता था, नहीं भी लौट सकती थी, तुमने तो जाते समय एक बार खोज-खबर भी नहीं ली। सम्पूर्ण मार्ग तुम्हारी खिड़की की ओर देखते-देखते कटा, एक बार छाया तक आँखों में नहीं पड़ी। रोगिणी बहिन चली जा रही है, क्या थोड़ी-सी भी ममता नहीं हुई, मँझली बहू? ऐसी पत्थर हो तुम?

मँझली बहू के नेत्र छलछला आए, परंतु उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

लक्ष्मी बोली—मेरा और कोई भी दोष है, मँझली वहू। तुम्हारी तरह मेरे प्राण निष्ठुर नहीं हैं। भगवान् न करे, परंतु ऐसे अवसर पर मैं तुम्हें देखे विना रह नहीं सकती थी।

मँझली वहू ने इस अभियोग का भी कोई जवाब नहीं दिया, निरुत्तर खड़ी रही।

लक्ष्मी और कभी नहीं आई, आज पहिली ही बार इस घर में प्रवेश किया है। कमरों को घूम-फिर कर देखने लगी। सौ वर्षों का पुराना-धुराना घर, केवल तीन कमरे ही किसी प्रकार निवास करने योग्य रह गए थे। दरिद्र का निवास, मरम्मत कराने की सामर्थ्य नहीं, तो भी अनावश्यक गन्दगी उसमें कहीं भी नहीं है। थोड़े से विछौने चमचमा रहे हैं, दो-चार देवी-देवताओं के चित्र टँगे हुए हैं, और हैं मँझली वहू के हाथों से निर्मित विभिन्न भाँति के शिल्पकर्म अधिकतर ऊन और सूत के काम हैं। उनमें किसी नौसिखिए के हाथ का बना लाल चोंच तथा हरे रङ्ग वाला न तो कोई तोता है और न पंचरङ्गी विल्ली की ही सूरत है। मूल्यवान फ्रेम में जड़े हुए लाल, नीले बैंगनी, श्वेत पीले आदि अनेकों रङ्गों के विचित्र संयोग से ऊन द्वारा बुने गए 'वैलकम' 'आइए बैठिए' अथवा अशुद्ध काढ़े गए गीता के श्लोकार्द्ध भी नहीं हैं। लक्ष्मी ने चकित होकर पूछा—वह किनकी तस्वीर है मँझली वहू, जैसे पहिचानी सी लगती है।

मँझली वहू ने शरमा कर हँसते हुए कहा—वह तिलक महाराज की तस्वीर देखकर बनाने का प्रयत्न किया था, दीदी। किन्तु कुछ भी नहीं वनी। यह बात कहकर उसने सामने की दीवाल पर टँगी हुई भारत के कौस्तुभ लोकमान्य तिलक की तस्वीर को उङ्गली से दिखा दिया।

लक्ष्मी वहुत देर तक उसकी ओर देखती रहने के वाद धीरे-धीरे बोली—पहिचान नहीं सकी, यह मेरा ही दोष है, मँझली वहू, तुम्हारा नहीं। मुझे सिखाओगी भई? यह विद्या अगर सीख सकूँ

चौंककर उठती हुई उसने आसन बिछा दिया। उद्विग्न कण्ठ से पूछा, दो-तीन दिन नहीं आईं, आपका शरीर ठीक नहीं था शायद ?

लक्ष्मी ने गम्भीर होकर कहा नहीं, ऐसे ही पाँच-छै दिन नहीं आ सकी।

मँझली वहू आश्चर्य प्रकट करती हुई बोली पाँच-छै दिन नहीं आईं ? शायद इतने ही दिन हो गए, परन्तु आज इसलिए दो घण्टे अधिक ठहर कर काम को पूरा कर लेना चहिए।

लक्ष्मी बोली, हूँ। परन्तु मेरी तबियत खराब ही हो गई हो तो तुम्हें तो एक बार पता लगा लेना उचित था ?

मँझली वहू शरमाती हुई बोली—उचित अवश्य था, परन्तु गृहस्थी के अनेक तरह के काम हैं—अकेला मनुष्य, किसे भेजती बताओ ? परंतु अपराध हुआ है, इसे स्वीकार करती हूँ दीदी।

लक्ष्मी मन-ही-मन प्रसन्न हुई। इतने दिनों तक वह अत्यन्त अभिमान के कारण ही नहीं आ पाई थी, अपितु दिन-रात जाऊँ-जाऊँ करते ही उसके दिन कट गए थे। इस मँझली वहू को छोड़कर केवल घर में ही नहीं, सम्पूर्ण गाँव में भी और कोई नहीं है जिसके साथ हृदय खोलकर मिला जा सके। लड़का अपनी इच्छानुसार तस्वीरें देख रहा था। हरिलक्ष्मी ने उसे पुकार कर कहा, निखिल, पास तो आओ बेटे ? उसके पास आ जाने पर लक्ष्मी बक्स खोलकर एक सोने का हार उसके गले में पहनाती हुई बोली, जाओ, खेलो कूदो।

माँ का मुख गम्भीर हो उठा—उसने पूछा; आपने क्या उसे दे दी है ?

लक्ष्मी ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया—दे दी तो क्या हुआ ?

मँझली वहू ने कहा—आपके दे देने से ही वह कैसे ले लेगा ?

लक्ष्मी अप्रतिभ हो उठी, कहा—ताई क्या एक हार भी नहीं दे सकेगी ?

मँझली बहू बोली—यह तो नहीं जानती दीदी, परन्तु एक बात श्चित रूप से जानती हूँ कि माँ होने से मैं लेने नहीं दूँगी। निखिल, खोलकर अपनी ताईजी को दे दो। दीदी, हम गरीब हैं, परन्तु खारी नहीं हैं। कोई एक मूल्यवान वस्तु पाने के लिए दोनों हाथ ला दें, यह नहीं होगा।

लक्ष्मी स्तब्ध होकर बैठी रही। आज भी उसका मन कहने लगा, पृथ्वी फट जाओ।

जाते समय उसने कहा—परन्तु यह बात तुम्हारे जेठ के कान में पड़ेगी मंझली बहू।

मँझली बहू बोली—उनकी अनेकों बातें मेरे कानों में आती हैं, मेरी एक बात उनके कान में पड़ जाने से कान अपवित्र नहीं हो जाएँगे।

लक्ष्मी ने कहा—ठीक, परीक्षा करके देखना ही पड़ेगा। फिर कुछ ठहर कर बोली—मेरा खामखाह अपमान करने की जरूरत नहीं है मँझली बहू। मैं भी दण्ड देना जानती हूँ।

मँझली बहू बोली—यह तो आपकी नाराजगी की बात हुई। अन्यथा मैंने तो आपका अपमान नहीं किया। केवल अपने पति का ही खामखाह अपमान आपको नहीं करने दिया यह समझने की शिक्षा आपको है।

लक्ष्मी ने कहा—वह है, नहीं है तो केवल तुम जैसी देहा औरतों के साथ लड़ने-झगड़ने की शिक्षा दी।

मँझली बहू ने इस कड़वी बात का उत्तर नहीं दिया. रह गई।

लक्ष्मी चलने के लिए प्रस्तुत होते हुए बोली—उस हार मूल्य कुछ भी हो, बालक को स्नेह के कारण ही दिया था, तु पति का दु:ख दूर होगा, यह सोचकर नहीं दिया था। मँझली

बड़े आदमी होने मात्र से ही गरीब का केवल अपमान करते फिरते हैं, केवल यही सीख रक्खा है, प्यार भी कर सकते हैं, यह तुमने नहीं सीखा ! सीखने की आवश्यकता है। परन्तु फिर जाकर हाथ-पैर मत छूती फिरना।

प्रत्युत्तर में मँझली बहू तनिक मुस्कुराती हुई बोली—नहीं दीदी, उसकी चिन्ता तुम्हें नहीं करनी पड़ेगी।

३

बाढ़ के दबाव से मिट्टी का बाँध जब टूटना शुरू होता है, उस समय उसका साधारण-सा आरम्भ देखकर कल्पना भी नहीं होती कि अविश्रान्त जल प्रवाह इतने अल्प समय में ही उस विदीर्णता को इतना भयावह इतना सुविशाल कर डालेगा। ठीक ऐसा ही हुआ हरिलक्ष्मी के सम्बन्ध में। पति के समीप विपिन और उसकी स्त्री के विरुद्ध लगाए गए अभियोग की उसकी बातें जब समाप्त हुईं, तब उसके परिणाम की कल्पना करके वह स्वयं भयभीत हो गई। झूठ बोलने का उसका स्वभाव भी नहीं है बोलते समय उसकी शिक्षा और मर्यादा भी बाधक बनती है, परन्तु दुर्निवार जल स्रोत की भाँति जो सब बातें अपनी ही झोंक में उसके मुँह से बाहर निकल पड़ीं, उनमें बहुत सी जो सत्य नहीं थीं। उन्हें स्वयं भी वह समझ गई। और उनका गतिरोध करना भी जैसे उसके वश के बाहर है, इसे अनुभव करने में भी लक्ष्मी पीछे नहीं रही। केवल एक बात को वह अभी तक ठीक से नहीं समझ पाई, वह उसके पति का स्वभाव है। वह जैसा निष्ठुर है, वैसा है प्रतिहिंसा परायण एवं वैसा ही वर्व्वर है पीड़ा पहुँचाने की भी कहीं कोई सीमा है, इसे जैसे वह जनता ही नहीं। आज शिवचरण उछला-कूदा नहीं सब बातों को सुनकर केवल यह

साल लौटकर नहीं आएगा।,

ा, अच्छा है, छः महीने बाद देखना।

ही ठीक है।

अपमान-लाञ्छना की ज्वाला हरिलक्ष्मी के हृदय में जल ही ही थी। विपिन की स्त्री अच्छी तरह दण्ड भोगे, इसे वह सचमुच ही चाहती थी, परन्तु शिवचरण के बाहर चले जाने पर इस साधारण सी बात को मन के भीतर बारम्बार घुमाने पर भी लक्ष्मी के मन को शान्ति नहीं मिल पाई। कहीं कोई बड़ी भारी खराबी हो गई है, ऐसा उसे बोध होने लगा।

कई दिन बीत जाने पर किसी एक बात के प्रसङ्ग में हरिलक्ष्मी ने मुस्कुराते हुए अपने पति से पूछा, उन लोगों के सम्बन्ध में कुछ कर रहे हो या नहीं?

किन के सम्बन्ध में?

विपिन देवर के सम्बन्ध में?

शिवचरण के निस्पृह भाव से कहा—क्या करूं, और कर ही क्या सकता हूं? मैं साधारण आदमी जो ठहरा!

हरिलक्ष्मी ने उद्विग्न होकर कहा, इस बात का मतलब?

शिवचरण ने कहा—मँझली बहू कहा करती है न, राज्य जेठजी का नहीं है—अँग्रेज गवर्नमेंट का है।

हरिलक्ष्मी ने कहा—कहती क्यों नहीं है? परन्तु, अच्छ क्या अच्छा?

स्त्री ने तनिक सन्देह प्रकट करते हुए कहा—परंतु मँझली तो ठीक इस तरह की बात कभी कहती नहीं। बड़ी चालाक है बहुत से लोग बात को बढ़ा चढ़ाकर भी तुम से कह देते हैं।

शिवचरण ने कहा—अचरज नहीं है, तो भी क्या, इ को मैंने अपने कानों से सुना है।

हरि लक्ष्मी विश्वास नहीं कर सकी। परन्तु उसी समय पति के मनोरंजन के लिए सहसा नाराजी प्रकट करती हुई बोल उठी—कहो तो सही, इतना अधिक अहङ्कार! मुझे तो जो चाहा सो कहा, परन्तु जेठ होने के नाते तुम्हारा तो कुछ सम्मान रखने की आवश्यकता थी!

शिवचरण बोला—हिन्दुओं के घर में ऐसा ही तो सब लोग समझते हैं। पढ़ी-लिखी विद्वान् औरत जो ठहरी! तभी तो मेरा अपमान कर पाती है, परन्तु तुम्हारा अपमान करके कोई नहीं बच सकता। बाहर एक जरूरी काम है, मैं चला। कह कर शिवचरण बाहर निकल गया। बात को जिस प्रकार हरिलक्ष्मी कहना चाहती थी, वह नहीं हुआ, अपितु उल्टा हो गया। पति के चले जाने पर उसे रह-रहकर यही ख्याल होने लगा।

बाहर जाकर शिवचरण ने विपिन को बुलवा कर कहा—पाँच-सात वर्षों से तुमसे कहता चला आ रहा हूँ, विपिन, अपने मवेशियों को यहाँ से हटालो, सोने के कमरे में ठहरना कठिन हो गया है, बात को क्या तुमने अपने कान में न डालने का निश्चय कर रक्खा है?

विपिन ने आश्चर्यचकित होकर कहा—क्या मैंने तो एकबार भी नहीं सुना बड़े भाई?

शिवचरण ने आसानी के साथ कहा—कम-से-कम दस बार मैंने अपने ही मुँह से तुम्हें कहा है। तुम्हें याद न रहने से कोई हानि नहीं, परन्तु इतनी बड़ी ज़मींदारी का जिसे शासन करना पड़ता है, उसकी बात को भूल जाने से नहीं चलेगा। खैर कुछ भी हो, तुम्हें स्वयं यह अक्ल रखना उचित है कि दूसरे की जगह में अपने मवेशी बाँधना कितने दिन तक चलेगा? कल ही उन्हें हटा लेना। मुझे और अवकाश नहीं मिलेगा, तुम्हें अन्तिम बार जता दिया है।

विपिन के मुँह से ऐसी ही बात नहीं निकलती, अचानक इस

अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रस्ताव के सम्मुख वह एकदम अभिभूत होगया। उसके पितामह के समय से जो मवेशीघर है, उसे वह अपना ही समझता आ रहा है, वह दूसरे का है, इतनी बड़ी मिथ्या उक्ति का वह कोई प्रतिवाद तक नहीं कर सका, चुपचाप घर लौट आया।

उसकी स्त्री ने सब वृत्तान्त सुन कर कहा—परन्तु राजा की अदालत तो खुली हुई है ?

विपिन चुप रह गया। वह कितना भी भला आदमी हो, इस बात को जानता था कि अंग्रेज राजा की अदालत के घर के बड़े दरवाज़े जितने खुले हुए हैं। दरिद्र के प्रवेश करने का मार्ग उतना खुला हुआ नहीं है; हुआ भी वही। दूसरे दिन बड़े बाबू के लोगों ने आकर प्राचीन एवं जीर्ण गोशाला को तोड़कर लम्बी दीवार खड़ी करदी। विपिन थाने में जाकर खबर दे आया, परन्तु यही आश्चर्य रहा कि शिवचरण की पुरानी ईंटों की नई दीवार जबतक सम्पूर्ण न होगई, तबतक एक भी रंगीन-पगड़ी उसके समीप नहीं आई। विपिन की स्त्री ने हाथ की चूड़ी बेचकर अदालत में नालिश की, परन्तु उससे गहना तो चला गया, और कुछ नहीं हुआ।

विपिन की रिश्ते में बुआ लगने वाली एक शुभाकांक्षिणी ने इस विपत्ति में हरिलक्ष्मी के समीप जाने के लिए विपिन की स्त्री को सलाह दी, परन्तु उसे शायद यह उत्तर दे दिया, बाघ के समीप हाथ जोड़ कर खड़े होने से और क्या लाभ होगा बुआ ? प्राण जो जाने हैं सो तो जाएँगे ही, केवल ऊपर से अपमान और मिल जाएगा।

यह बात हरिलक्ष्मी के कान में आ पहुँची, वह चुप रह गई, एक उत्तर तक देने की चेष्टा भी नहीं की।

पश्चिम से लौट आने के समय से ही उसका शरीर किसी भी दिन पूर्णरूपेण स्वस्थ नहीं रहा था, इस घटना के महीने भर के भीतर ही वह फिर बुखार में गिर पड़ी। कुछ समय तक [illegible] इलाज

चला, तब डाक्टर के उपदेश के अनुसार दुबारा उसे विदेश-यात्रा के लिए तय्यार होना पड़ा।

अनेकों प्रकार के काम-काज के झंझटों से इस वार शिवचरण साथ नहीं जा सका, देश में ही रह गया। जाते समय वह स्वामी से एक बात कहने के लिए मन-ही-मन फड़फड़ाने लगी, परन्तु मुँह खोल कर किसी प्रकार भी वह इस व्यक्ति के सम्मुख उस बात को कह नहीं सकी। उसके मन को केवल यही लगने लगा, यह अनुरोध व्यर्थ होगा, इसका अर्थ वे नहीं समझेंगे।

४

हरिलक्ष्मी के रोगग्रस्त शरीर को पूर्णरूपेण स्वस्थ होने में इस बार कुछ अधिक समय लग गया। प्रायः एक वर्ष बाद वह बेलपुर लौट कर आई। वह केवल जमींदार की पत्नी ही नहीं, इतने बड़े परिवार की गृहिणी भी है, मुहल्ले की स्त्रियाँ झुण्ड बाँध कर उसे देखने के लिए आई। जो रिश्ते में बड़ी थीं, उन्होंने आशीर्वाद दिया, जो छोटी थीं उन्होंने प्रणाम कर चरणरज ली। आई नहीं केवल विपिन की स्त्री। वह आएगी नहीं,हरिलक्ष्मी इसे जानती थी। इस एक वर्ष के बीच वे लोग कैसे हैं, जो सब फौजदारी और दीवानी के मुक-द्मे उनके विरुद्ध चल रहे थे, उनका नतीजा क्या हुआ, यह सब कोई भी सम्वाद उसने किसी से भी जानने का प्रयत्न नहीं किया। शिव-चरण कभी घर पर और कभी पश्चिम में स्त्री के पास जाकर रह आया करता था, परन्तु किसी भी दिन पति से भी इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं किया। पूछते हुए उसे जैसे भय लगता। मन को लगता, इतने दिनों में कुछ न कुछ तो निवटारा हो ही गया होगा, शायद इनके क्रोध की प्रखरता भी अब वैसी न रही होगी—पूछे जाने पर पहले का घाव फिर से ताजा न हो जाय, इस आशङ्का से

वह एक ऐसा भाव धारण किए रहती कि जैसे वे सब तुच्छ बातें हैं और उसे याद ही नहीं रही। उधर शिवचरण भी अपनी ओर से कभी भी विपिन के सम्बन्ध में चर्चा नहीं छेड़ता था। उसे जैसे स्त्री के अपमान की बात भूली ही नहीं है अपितु उसकी अनुपस्थिति में यथा उचित व्यवस्था भी कर रक्खी है, इस बात को वह हरिलक्ष्मी से छिपाए ही रखता। उसकी अभिलाषा थी, लक्ष्मी घर लौटकर अपनी आँखों से ही सब कुछ देख पाकर आनन्दित, आश्चर्य से अभिभूत हो उठेगी।

अधिक दिन चढ़ने से पहले ही बुआ की बारम्बार स्नेहपूर्ण ताड़ना से लक्ष्मी स्नान करके आई तो उन्होंने उत्कण्ठा प्रकट करते हुए कहा—तुम्हारा शरीर अस्वस्थ है बहू, नीचे जाने का काम नहीं है, यहीं थाली परोसवाकर मँगाए देती हूँ।

लक्ष्मी ने आपत्ति प्रकट कर मुस्कुराते हुए कहा—शरीर पहले ही की भाँति स्वस्थ होगया है बुआजी, मैं रसोईघर में जाकर ही खा आऊँगी, ऊपर ढोकर लाने की आवश्यकता नहीं है। चलो, नीचे ही चल रही हूँ।

बुआ ने बाधा दी, शिवू की मनाही है यह जान लो और उसी की आज्ञा से नौकरानी कमरे के भीतर आसन बिछाकर सफाई कर गई है। दूसरे ही क्षण रसोईदारिन भोजन आदि ढोकर ले आई। उसके चले जाने पर लक्ष्मी ने आसन पर बैठ कर पूछा—रसोईदारिन कौन है बुआजी? पहले तो देखी नहीं?

बुआ हँसती हुई बोली, पहिचान नहीं सकी बहू, वह हमारे विपिन की बहू है।

लक्ष्मी स्तब्ध होकर बैठी रही। मन-ही-मन समझ गई, उसे चमत्कृत करने के लिए ही इतना बड़ा षड़यन्त्र गुप्त रूप से रचा गया है। कुछ देर में अपने को सँभालकर जिज्ञासु मुख से बुआ के मुँह की ओर देखने लगी।

बुआ बोली—विपिन मर गया है, सुना तो होगा ?

लक्ष्मी ने कुछ नहीं सुना था, किन्तु अभी जो उसे भोजन परोस गई है, वह विधवा है, यह तो देखते ही ज्ञात हो जाता है। गर्दन हिलाकर कहा, हाँ।

बुआ ने शेष घटना को विवृत करते हुए कहा—जो खाक-धूलि थी, उस सबको मामले-मुकद्दमे में गँवा कर विपिन मर गया। बाकी रुपया चुकाने में मकान भी चला जाता, मैंने परामर्श दिया, मँझली बहू, साल-दो-साल शरीर से मेहनत करके चुका दे, तो तेरे लड़के के लिए माथा टेकने की जगह तो कम-से-कम बच जाएगी।

लक्ष्मी विवर्ण मुख से उसी प्रकार अपलक नेत्रों से चुपचाप देखती रही। बुआ अचानक कण्ठस्वर को धीमा करती हुई बोली—फिर भी मैंने एकबार उसे अलग ले जाकर कहा था, मँझली बहू, जो होना था सो हुआ, अब भी उधार-उधूर लेकर जैसे भी हो सके, एकबार काशी जाकर बहू के साथ पाँव जोड़ ले। लड़के को उसके पाँवों पर डाल कर कहना—दीदी, इसका तो कोई दोष नहीं है, इसे बचाओ।

बात कहते-कहते बुआ की आँखें आँसुओं से भर आईं, आँचल से पोंछती हुई बोली—परन्तु वह सिर नीचा किए, मुँह सिए चुपचाप बैठी रही, हाँ-ना का एक जवाब तक नहीं दिया।

हरिलक्ष्मी समझ गईं, इस सम्पूर्ण अपराध का बोझ उसी के माथे पर आ पड़ा है। उसके मुँह का सारा अन्न-व्यञ्जन तीखे-विष जैसा हो उठा एवं एक ग्रास भी कण्ठ में न निगला जा सका। बुआ किसी काम से क्षण भर के लिए कमरे से बाहर गईं, उन्होंने लौटकर देखा तो खाने की अवस्था देखकर चञ्चल हो उठीं। पुकार दी—विपिन की बहू! विपिन की बहू!

विपिन की बहू के द्वार पर बाहर आकर खड़ी होते ही चिल्ला पड़ीं। उनकी क्षणभर पहले की करुणा, आँखों के आँसू न जाने कहाँ

विला गए। तीक्ष्ण स्वर में कह उठीं, इस तरह लापरवाही से काम करने पर नहीं चलेगा, विपिन की वहू! वहू एक दाना भी मुँह में नहीं डाल सकी, ऐसा ही खाना वनता है!

घर के वाहर से इस तिरस्कार का कोई उत्तर नहीं आया, परन्तु दूसरी के अपमान के भार की लज्जा और वेदना से घर के भीतर हरिलक्ष्मी का माथा झुक गया। बुआजी ने फिर कहा—नौकरी करने आई हो तो इस तरह चीज-वस्त विगाड़ने से नहीं चलेगा, वेटी! और भी नौकर-चाकर जिस तरह काम करते हैं, तुम्हें भी उसी तरह करना होगा, यह कहे देती हूँ।

विपिन की स्त्री इस वार धीरे-धीरे वोली—प्राणपण से वही प्रयत्न करती हूँ बुआजी, आज न जाने क्या हो गया। यह कह कर वह नीचे चली गई। लक्ष्मी के उठकर खड़ी होने भर से बुआजी हाय-हाय कर उठीं। लक्ष्मी ने कोमल कण्ठ से कहा—क्यों दुःख करती हो बुआजी, मेरा शरीर ठीक नहीं है, इसीलिए नहीं खा सकी—मँझली वहू की रसोई में कोई कमी नहीं है।

हाथ मुँह धो आकर अपने निर्जन घर में हरिलक्ष्मी की जैसे दम वन्द होने लगी। सव तरह के अपमान सहकर भी विपिन की स्त्री का शायद इस घर में नौकरी करना चल सकता है, परन्तु आज के वाद गृहिणीपन का व्यर्थ श्रम करके उसके स्वयं के दिन किस प्रकार वीतेंगे? मँझली वहू को एक सान्त्वना तो भी वाकी है, उसकी विना दोष के दुःख सहने की सान्त्वना, परन्तु उसके अपने लिए कहाँ क्या शेष रह गया है!

रात को पति के साथ क्या वात करे, हरिलक्ष्मी भलीभाँति सोचकर भी नहीं जान सकी। आज उसके मुँह की एक वात विपिन की स्त्री के सभी दुःख दूर हो सकते हैं, परन्तु असहाय जो मनुष्य इतना वड़ा वदला ले सकता है, जिसके

खटकती तक नहीं, उससे भिक्षा माँगने की हीनता स्वीकार करने को लक्ष्मी की किसी भी प्रकार प्रवृत्ति नहीं हुई।

शिवचरन ने तनिक हँसते हुए पूछा—मँझली बहू से साक्षात्कार हुआ? कहो कैसा खाना बनाती है?

हरिलक्ष्मी जवाब नहीं दे सकी, उसने सोचा—यही व्यक्ति उसका पति है एवं सम्पूर्ण जीवन इसी के घर में रहना पड़ेगा, यह सोच कर उसका मन कहने लगा—पृथ्वी फट जाओ।

दूसरे दिन सबेरे ही लक्ष्मी ने दासी को भेज कर बुआजी को कहलवा भेजा, उसे बुखार आ गया है, वह कुछ भी नहीं खाएगी। बुआजी ने कमरे में आकर जिरह करते-करते लक्ष्मी की नाक में दम कर दिया, उसके मुँह के भाव एवं कण्ठस्वर से उन्हें न जाने कैसे यह सन्देह हो गया कि लक्ष्मी कुछ छिपाने की चेष्टा कर रही है। कहा—परन्तु तुम्हें तो सचमुच बुखार नहीं है बहू?

लक्ष्मी ने सिर हिला कर जोर से कहा—मुझे बुखार है, मैं कुछ नहीं खाऊँगी।

डाक्टर के आने पर उसे दरवाजे के बाहर से ही विदा करते हुए लक्ष्मी ने कहा—आप तो जानते ही हैं, आपकी औषधि से मुझे कुछ नहीं होता, आप जाइए।

शिवचरण ने आकर बहुत-कुछ पूछा—परन्तु किसी भी बात का उत्तर नहीं पाया।

और भी दो-तीन दिन जब इसी प्रकार बीत गए, तब घर के सभी लोग जैसे किसी अज्ञात आशंका से उद्विग्न हो उठे।

उस दिन तीसरे प्रहर का समय था, लक्ष्मी स्नानघर से निःशब्द कोमल पाँवों से एक किनारे चलती हुई ऊपर जा रही थी। बुआजी रसोईघर के बरामदे से देखते ही चीत्कार कर उठीं—देख बहू, विपिन की बहू का काम, अन्त में चोरी शुरू कर दी?

हरिलक्ष्मी पास जाकर खड़ी हो गई। मँझली बहू मेज के ऊपर निःशब्द नीचा मुँह किए बैठी थी, एक वर्त्तन में भोजन को गमछे से ढाँक कर सामने रखे हुए। बुआजी दिखाती हुई बोली—तुम्हीं कहो बहूरानी, इतने भात-तरकारी को एक आदमी खा सकता है। घर लिए जा रही है लड़के के लिए, जबकि बारबार मना कर दिया गया है। शिवचरण के कान में बात जाने से फिर रक्षा नहीं हो सकेगी—गर्दन पकड़ कर दुरदुरातेहुए निकाल देगा। बहूरानी, तुम मालकिन हो, तुम्हीं इसका विचार करो। यह कह कर बुआजी जैसे एक कर्त्तव्य को समाप्त कर दम लेती हुई बच गई।

उनकी चीत्कार के शब्द से घर के नौकर, दासी आदि लोग जो जहाँ थे, तमाशा देखने दौड़ते हुए आ खड़े हुए और उन्हीं के बीच चुपचाप बैठी रहीं उस घर की मँझली बहू और उसकी मालकिन, इस घर की गृहिणी !

इतनी छोटी, इतनी तुच्छ वस्तु को लेकर इतना भीषण काण्ड उठ खड़ा होगा, लक्ष्मी को इसका स्वप्न में भी ख्याल न था। अभियोग का विचार क्या करे, अपमान, अभिमान, लज्जा से वह मुँह भी नहीं उठा सकी। लज्जा दूसरे के लिए नहीं, वह अपने ही लिए थी। उसकी आँखों से पानी बरसने लगा, उसकी इच्छा हुई, इतने लोगों के सामने वही जैसे पकड़ी गई है एवं विपिन की स्त्री ही उसका विचार करने के लिए बैठी है।

दो-तीन मिनट इसी प्रकार रुक कर सहसा बड़ी चेष्टा से लक्ष्मी ने स्वयं को सँभालते हुए कहा—बुआजी, तुम सभी एकदम इस कमरे से बाहर निकल जाओ।

उसके इशारे पर सब चले गए, तब लक्ष्मी धीरे-धीरे मँझली बहू के पास जाकर बैठ गई; अपने हाथ से उसके मुँह को उठा कर देखा, उसकी भी दोनों आँखों से जल बह रहा था। कहा—मँझली बहू, मैं तुम्हारी दीदी हूँ, यह कह कर अपने आँचल से उसके आँसू पोंछ दिए।



पारस

१

मजूमदारों का वंश बड़ा वंश है, गाँव में उसकी बहुत बड़ी प्रतिष्ठा है। बड़े भाई गुरुचरण इस वंश के कर्त्ता-धर्त्ता हैं। केवल वंश का ही क्यों, यदि सम्पूर्ण गाँव का कर्त्ता-धर्त्ता कहा जाय तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। बड़े आदमी तो और भी थे, परन्तु इतनी अधिक श्रद्धा-भक्ति का पात्र श्रीकुञ्जपुर में अन्य कोई नहीं था। उन्होंने अपने जीवन में नौकरी नहीं की, यदि गाँव छोड़कर अन्यत्र जाने के लिए तय्यार हो जाते तो उनके लिए वह दुष्प्राप्य भी नहीं थी। यौवन के प्रारम्भ में वे जो एकबार समीपवर्त्ती जिला-स्कूल की मास्टरी के कार्य में पड़े तो किसी भी लोभ के वशीभूत होकर उस विद्यालय की ममता त्याग कर अन्यत्र जाने को तैयार नहीं हुए। यहाँ उनका वेतन तीस रुपए से बढ़ते-बढ़ते पचास रुपए तक हो गया था, और अब उसका आधे पच्चीस रुपए की पेन्शन पारहे हैं। तीन वर्ष हुए, उन्होंने अवसर ग्रहण कर लिया है। संसार में अभी तक उनके लिए रुपए की कमी सबसे बड़ी वस्तु सिद्ध

नहीं हुई। यदि ऐसा न होता तो झगड़ा मिटाने, मामलों का फैसला करने, दलबन्दी की गुत्थियों को सुलझाने में उनका आदेश ही श्रीकुञ्ज-पुर में सर्वमान्य नही हो पाता। उनकी असीम धर्मनिष्ठा, चारित्रिक दृढ़ता एवं अविचलित साधुता के समक्ष सब लोग सम्मानपूर्वक मस्तक झुकाते हैं। आयु लगभग साठ के होगी। यदि कोई व्यक्ति चरित्र, साधुता अथवा धार्मिकता का अधिक प्रदर्शन करता तो आस-पास के दस-बीस गाँव के लोग यह कहकर उसका उपहास करते—ओफ़् ओ, तुम तो एकदम गुरुचरण जैसे मालूम होते हो !

गुरुचरण की स्त्री नहीं थी, केवल एक लड़का था—विमल। संसार में सम्भवत: अद्भुत कहलाने योग्य कुछ है ही नहीं, अन्यथा इतने बड़े सर्वगुण सम्पन्न पिता का ऐसा सर्वदोष-सम्पन्न पुत्र कैसे हुआ—कुछ समझ में नहीं आता।

पुत्र के साथ पिता का साँसारिक बन्धन नहीं के बराबर था, उनका सम्पूर्ण बन्धन जा पड़ा था उनके भतीजे पारस पर। हरिचरण का बड़ा लड़का पारस ही जैसे उनका अपना लड़का था। पारस एम० ए० पास करने के उपरान्त कानून पढ़ रहा है उसे वर्णमाला की पहिली पुस्तक से लेकर आज तक सब कुछ वे ही पढ़ाते चले आ रहे हैं। उनका यह दुःख कि विमल ने कुछ नहीं सीखा, पारस के कारण दूर हो गया है।

२

छोटा भाई हरिचरण इतने दिनों से परदेश में साधारण-सी नौकरी कर रहा था अकस्मात लड़ाई के बाद वह न जाने कैसे बड़ा आदमी बन गया तथा नौकरी छोड़कर घर चला आया। लोगों को ऊँची ब्याज पर रुपये उधार देने लगा, अपनी स्त्री के नाम से एक बगीचा खरीद बैठा, और ऐसे ही न जाने और क्या-क्या काम करने

पारस

मजूमदारों का वंश बड़ा वंश है, गाँव में उसकी बहुत बड़ी प्रतिष्ठा है। बड़े भाई गुरुचरण इस वंश के कर्त्ता-धर्त्ता हैं। केवल वंश का ही क्यों, यदि सम्पूर्ण गाँव का कर्त्ता-धर्त्ता कहा जाय तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। बड़े आदमी तो और भी थे, परन्तु इतनी अधिक श्रद्धा-भक्ति का पात्र श्रीकुञ्जपुर में अन्य कोई नहीं था। उन्होंने अपने जीवन में नौकरी नहीं की, यदि गाँव छोड़कर अन्यत्र जाने के लिए तय्यार हो जाते तो उनके लिए वह दुष्प्राप्य भी नहीं थी। यौवन के प्रारम्भ में वे जो एकबार समीपवर्त्ती जिला-स्कूल की मास्टरी के कार्य में पड़े तो किसी भी लोभ के वशीभूत होकर उस विद्यालय की ममता त्याग कर अन्यत्र जाने को तैयार नहीं हुए। यहाँ उनका वेतन तीस रुपए से बढ़ते-बढ़ते पचास रुपए तक हो गया था, और अब उसका आधे पच्चीस रुपए की पेन्शन पारहे हैं। तीन वर्ष हुए, उन्होंने अवसर ग्रहण कर लिया है। संसार में अभी तक उनके लिए रुपए की कमी सबसे बड़ी वस्तु सिद्ध

नहीं हुई। यदि ऐसा न होता तो झगड़ा मिटाने, मामलों का फैसला करने, दलबन्दी की गुत्थियों को सुलझाने में उनका आदेश ही श्रीकुञ्ज-पुर में सर्वमान्य नहीं हो पाता। उनकी असीम धर्मनिष्ठा, चारित्रिक दृढ़ता एवं अविचलित साधुता के समक्ष सब लोग सम्मानपूर्वक मस्तक झुकाते हैं। आयु लगभग साठ के होगी। यदि कोई व्यक्ति चरित्र, साधुता अथवा धार्मिकता का अधिक प्रदर्शन करता तो आस-पास के दस-बीस गाँव के लोग यह कहकर उसका उपहास करते—ओफ़् ओ, तुम तो एकदम गुरुचरण जैसे मालूम होते हो!

गुरुचरण की स्त्री नहीं थी, केवल एक लड़का था—विमल। संसार में सम्भवतः अद्भुत कहलाने योग्य कुछ है ही नहीं, अन्यथा इतने बड़े सर्वगुण सम्पन्न पिता का ऐसा सर्वदोष-सम्पन्न पुत्र कैसे हुआ—कुछ समझ में नहीं आता।

पुत्र के साथ पिता का साँसारिक बन्धन नहीं के बराबर था, उनका सम्पूर्ण बन्धन जा पड़ा था उनके भतीजे पारस पर। हरिचरण का बड़ा लड़का पारस ही जैसे उनका अपना लड़का था। पारस एम० ए० पास करने के उपरान्त कानून पढ़ रहा है उसे वर्णमाला की पहिली पुस्तक से लेकर आज तक सब कुछ वे ही पढ़ाते चले आ रहे हैं। उनका यह दुःख कि विमल ने कुछ नहीं सीखा, पारस के कारण दूर हो गया है।

२

छोटा भाई हरिचरण इतने दिनों से परदेश में साधारण-सी नौकरी कर रहा था अकस्मात लड़ाई के बाद वह न जाने कैसे बड़ा आदमी बन गया तथा नौकरी छोड़कर घर चला आया। लोगों को ऊँची व्याज पर रुपये उधार देने लगा, अपनी स्त्री के नाम से एक बगीचा खरीद बैठा, और ऐसे ही न जाने और क्या-क्या काम करने

लगा, जिसके कारण उसके रुपये की गन्ध को पाँच-सात गाँव के लोगों की नाक तक पहुँचते हुए देर न लगी।

एक दिन हरिचरण ने आकर नम्रतापूर्वक कहा—भय्या, मैं बहुत दिनों से आपसे एक बात कहने की सोच रहा हूँ...

गुरुचरण ने कहा—अच्छी बात है, कहो।

हरिचरण बगलें झाँकते हुए बोला—आप अकेले अब और कितना कर सकेंगे, आयु भी बहुत हो रही है...

गुरुचरण ने कहा—सो तो है ही। साठवाँ वर्ष चल रहा है।

हरिचरण बोला—इसी से कह रहा था, मैं तो अब घर पर ही रहूँगा, जमीन-जायदाद सब बिना सिलसिले के पड़ी है, थोड़ा निशान लगा-लगू कर मैं ही यदि...

गुरुचरण ने थोड़ी देर तक अपने छोटे भाई के चेहरे की ओर देखते हुए कहा—जमीन-जायदाद तो अपनी मामूली-सी ही है, और बिना सिलसिले के भी नहीं पड़ी है, परन्तु क्या तुम न्यारे होने की बात कह रहे हो ?

हरिचरण ने लज्जा के मारे दातों तले जीभ दबाते हुए कहा—जी नहीं, जैसा है, जैसा चल रहा है, सब वैसा ही रहेगा; केवल जो कुछ अपने पास है, उसमें जरा निशान लगा लेना है और रसोई-बसोई भी बड़े झंझट की चीज है—सब कुछ इकट्ठा ही रहेगा—पर दाल और भात अलग-अलग कर लिया जाय, आप समझे नहीं...

गुरुचरण ने कहा—समझा क्यों नहीं। समझता तो हूँ ही अच्छी बात है, कल से ऐसा ही होगा।

हरिचरण ने जिज्ञासा की—निशान आप कैसे लगाएँगे, कुछ निश्चित किया है ?

गुरुचरण ने कहा—अबतक निश्चित करने की कोई आवश्य

कता नहीं पड़ी थी, यदि आज आ पड़ी है तो तीनों भाइयों के तीन हिस्से बराबर-बराबर बाँट देने से ही काम चल जाएगा।

हरिचरण ने आश्चर्य में भरकर कहा—तीन हिस्से कैसे ? मँझली बहू तो विधवा है, बाल-बच्चा भी कोई नहीं है, फिर उनका हिस्सा कैसा ? दो हिस्से ही होंगे।

गुरुचरण ने सिर हिलाते हुए कहा—नहीं, तीन हिस्से होंगे। मँझली बहू मेरे श्यामाचरण की विधवा है। जब तक जीवित रहेगी, तब तक हिस्सा तो पाएगी ही।

हरिचरण रुष्ट हो गया, बोला—कानून से तो नहीं पा सकती, केवल खाने-पहिनने भर को ले सकती है।

गुरुचरण ने कहा—यों तो ले ही सकती है, क्योंकि बहू जो ठहरी।

हरिचरण ने कहा मान लीजिए, कल को यदि वह कुछ बेच देना अथवा गिरवी रख देना चाहे तो ?

गुरुचरण ने कहा—कानून से यदि ऐसा हक़ प्राप्त होगा तभी करेगी।

हरिचरण का चेहरा स्याह पड़ गया, बोला—हूँ, करेगी क्यों नहीं।

दूसरे दिन हरिचरण हाथ में रस्सी और फीता लिए हुए नाप-जोख करता हुआ फिरने लगा। गुरुचरण ने न तो कुछ पूछा ही और न बाधा ही डाली। दो-तीन दिन पश्चात् ईंट, काठ, बालू, चूना और सुर्खी भी आ पहुँची। घर की पुरानी महरी ने आकर समाचार दिया, कल से राज-मजदूर काम लगाएँगे, छोटेबाबू की दीवाल खड़ी होगी।

गुरुचरण ने हँसते हुए कहा—सो तो देख ही रहा हूँ, कहने की क्या आवश्यकता है !

पाँच-छै दिन बाद एक दिन शाम को दरवाजे के बाहर पाँवों की आहट सुनकर गुरुचरण ने मुँह उठाते हुए पूछा, पंचू की माँ, क्या बात है ?

पंचू की माँ बहुत पुरानी महरी है। उसने सङ्कोच से दिखाते हुए कहा—मँझली बहू खड़ी है बड़े बाबू।

बड़ी बहू के मरने के बाद से विधवा भ्रातृ-वधू ही इस गृहस्थी की स्वामिनी हैं। वे ओट में खड़ी होकर जेठ से वार्त्तालाप करती हैं। उन्होंने कोमल कण्ठ से कहा, ससुर के घर में क्या मेरा कुछ अधिकार नहीं, जो छोटी बहू मुझे दिन-रात गालियाँ दिया करती है ?

गुरुचरण ने कहा—है क्यों नहीं बहू ! जैसा उसका है, ठीक वैसा ही तुम्हारा भी अधिकार है।

पंचू की माँ ने कहा—परन्तु इस तरह तो घर में टिकना भी कठिन है।

गुरुचरण सब सुन रहे थे, क्षणभर चुप रहकर बोले, पारस को आने के लिए पत्र लिख दिया है, पंचू की माँ, उसके आते ही सब ठीक हो जाएगा—तब तक तुम लोग भी थोड़ा सहन करती रहो।

मँझली बहू ने बाधा देते हुए कहा—परन्तु पारस क्या...

गुरुचरण टोकते हुए बोले—परन्तु कुछ नहीं मँझली बहू, मेरे पारस के सम्बन्ध में 'परन्तु' नहीं चल सकता। हरी उसका पिता अवश्य है, परन्तु वह लड़का मेरा ही है; संपूर्ण संसार एक ओर हो जाय तो भी वह मेरा ही रहेगा। उसके ताऊजी, कभी अन्याय नहीं करते, यह बात यदि वह न समझे तो समझो इतने दिनों तक मैंने व्यर्थ ही पराए लड़के को छाती से लगाकर आदमी बनाया।

दासी ने कहा—इस सम्बन्ध में भी क्या कहना है ! उस वर्ष चेचक निकली थी, तब आपके अतिरिक्त उसे यमराज के मुँह से और कौन छीन सकता था, बड़े बाबू ? तब कहाँ तो छोटे बाबू थे और कहाँ

उसकी सौतेली माँ ! भय के मारे कोई उसके पास तक नहीं जाता था। तब अकेले ताऊजी ही थे, क्या रात और क्या दिन।

मँझली वहू ने कहा—पारस की माँ जीवित रहती तो सम्भवतः उससे भी इतना करते न बनता।

गुरुचरण संकोच में पड़ गए, बोले—रहने दो बेटी, ये सब बातें।

उसके चले जाने पर वृद्ध गुरुचरण की आँखों के सामने विमला और पारस दोनों पास-पास खड़े हो गए। खिड़की के बाहर अन्धकार-पूर्ण आकाश की ओर देखता उनके मुँह से एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा। तदुपरान्त वे बाँस की मोटी लाठी उठाकर सरकारों की बैठक में शतरंज खेलने चले गए।

दूसरे दिन दोपहर को गुरुचरण खाना खाने बैठे थे। मकान के उत्तर की ओर बरामदे का कुछ भाग घेर कर हरिचरण की रसोई का काम चल रहा था। वहाँ से तीक्ष्ण नारी-कण्ठ से ऐसी-ऐसी कड़वी बातें निकलकर आ रहीं थीं कि जिनका कोई हिसाब ही नहीं। उनके भोजन में बहुत विघ्न हो रहा था, परन्तु उनमें जब अचानक पुरुष का भारी कण्ठ स्वर भी आ मिला। तब क्षणभर के लिए उनके कान खड़े हो गए और उसे सुनकर वे अचानक ही उठ खड़े हुए।

मँझली बहू ओट में से हाय-हाय कर उठीं एवं पंचू की माँ ने क्रोध और क्षोभ के मारे चीत्कार करते हुए इस दुर्घटना को प्रकट कर दिया।

आँगन में खड़े होकर गुरुचरण ने भाई को पुकारते हुए कहा—हरिचरण, स्त्रियों की बात पर मैं ध्यान नहीं देता, परन्तु तुम पुरुष होकर भी यदि बड़ी विधवा भौजाई का इस प्रकार अपमान करोगे, तो फिर उसका इस घर में रहना नहीं हो सकता।

इस बात का किसी ने कोई उत्तर नहीं

जाने के मार्ग में उन्हें छोटी बहू का परिचित तीक्ष्ण कण्ठस्वर फिर सुनाई दिया, वह उपहास करती हुई कह रही थी, इस प्रकार अपमान मत किया करो, कहे देती हूँ । अन्यथा मँझली बहू घर में ही न रहेंगी, तब क्या होगा ?

हरिचरण उत्तर दे रहा था, दुनियाँ रसातल में डूब जायेगी, और क्या होगा ! कौन रहने के लिए मस्तक की शपथ दिला रहा है ? चली जाए तो जान बचे । गुरुचरण ठिठक कर खड़े होगए एवं उन लोगों की बातचीत समाप्त हो जाने पर चुपचाप बाहर चले गए ।

३

हैडमास्टर महोदय की कन्या के विवाह में सम्मिलित होने के लिए गुरुचरण कृष्णनगर को प्रस्थान कर रहे थे, इतने ही में अकस्मात् सुना, पारस घर आगया है; और आते ही बुखार में पड़ गया है । वे घबराए हुए पारस के कमरे में घुस रहे थे कि सामने ही छोटे भाई को देखकर पूछ बैठे, पारस को ज्वर आगया है क्या ?

हरिचरण 'हूँ' कह कर चला गया । छोटी बहू की मायके की नौकरानी ने रास्ता रोकते हुए कहा—आप भीतर मत जाइए ।

न जाऊँ ? क्यों ?

भीतर दीदीजी बैठी हैं ।

उन्हें थोड़ा हट जाने के लिए कह दे न ।

नौकरानी ने कहा, हटकर कहाँ जाएंगी लड़के के सिर पर हाथ फेर रहीं हैं । कह कर वह अपने काम से चली गई ।

गुरुचरण स्वप्नाच्छन्न की भाँति खड़े रहे, फिर पारस को पुकारते हुए बोले—कैसी तबियत है बेटा ?

भीतर से इस व्याकुल प्रश्न का कोई उत्तर नहीं आया, परन्तु

नौकरानी ने कहीं से उत्तर दिया, भय्याजी को बुखार है, सुन तो लिया है।

गुरुचरण स्तब्ध होकर दो-तीन मिनट तक वहीं खड़े रहे। फिर धीरे से वाहर चले आये और किसी से कोई वात किए विना सीधे रेलवे स्टेशन की ओर रवाना होगए।

वहाँ ब्याह की धूम धाम में किसी ने कुछ ध्यान नहीं दिया, परन्तु काम-काज से निवट जाने पर उनके वहुत दिनों के मित्र हैड-मास्टर महोदय ने एकान्त में ले जाकर उनसे पूछा, क्या वात है गुरुचरण ? सुना है कि हरिचरण तुम्हारे बहुत पीछे पड़ा है।

गुरुचरण ने अन्यमनस्क की भाँति कहा—हरिचरण ? नहीं तो !

नहीं तो क्या जी ? हरिचरण की शैतानी का वृत्तान्त तो सभी सुन चुके हैं।

गुरुचरण को सहसा सभी वातें याद आगईं, बोले—हाँ-हाँ, ज़मीन-जायदाद के सम्बन्ध में हरिचरण कुछ गड़बड़ी कर रहा है।

उनकी वात के ढङ्ग से हैड मास्टर खिन्न होगए, दोनों बचपन के निष्कपट मित्र हैं, फिर भी गुरुचरण मन की बात को उदासीनता के आवरण में छिपाना चाहते हैं—यह देख कर उन्होंने फिर कोई बात नहीं पूछी।

गुरुचरण ने कृष्णनगर से घर लौट आकर देखा कि उनकी इन कई दिनों की अनुपस्थिति में अवसर का लाभ उठाकर हरिचरण ने आँगन में स्थान-स्थान पर गड्ढे खोद कर ऐसा हाल कर रक्खा है कि कहीं पाँव रखने को ही जगह नहीं है। वे समझ गये कि वह अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार घर का बँटवारा करके बीच में दोवाल खड़ी करेगा, उसके पास रुपया है, अतः किसी और के मतामत की उसे आवश्यकता नहीं है

वे अपने कमरे में जाकर कपड़े बदल रहे थे कि इतने में मँझली बहू को साथ लिए पंचू की माँ आ खड़ी हुई। गुरुचरण समाचार पूछना चाहते थे कि वह अचानक ही अस्फुट आर्त्तकण्ठ रोने लगी; और रोते हुए ही उसने बताया कि परसों सवेरे छोटे बाबू ने मँझली बहू की गरदन पकड़ कर धक्का देते हुए घर से बाहर निकाल दिया था, और यदि मैं उपस्थित न होती तो वे शायद मार-मार कर अधमरी भी कर डालते।

घटना को पूरी तरह से समझ लेने में गुरुचरण को अधिक दे न लगी। फिर भी वे मिट्टी के पुतले की भाँति अवाक् और निस्पन्‍ रह कर अचानक पूछ उठे, क्या सचमुच ही हरिचरण ने तुम्हा शरीर को हाथ लगाया था बहूरानी? लगा सका वह?

कुछ देर बाद पूछा—जान पड़ता है पारस तब शायद खाट प पड़ा होगा।

पंचू की माँ ने कहा—उन्हें तो कुछ हुआ ही नहीं बड़े बाबू, अभी आज ही तो सबेरे की गाड़ी से कलकत्ता चले गए हैं।

कुछ हुआ नहीं? तो वह अपने पिता की करतूत जान गया है?

पंचू की माँ ने कहा—हाँ, सभी कुछ।

गुरुचरण के पाँवों के नीचे से पृथ्वी निकल गई। बोले—रानी, इतने बड़े अपराध का दण्ड यदि उसे न मिले तो इस घ मेरा रहना उठ गया समझ लो। चलो अभी समय है, मैं गाड़ी आता हूँ, तुम्हें अदालत में चलकर नालिश करनी होगी।

अदालत में जाकर नालिश करने के नाम से मँझली बहू पड़ी। गुरुचरण ने कहा—भले घर की बहू-बेटियों के लिए यह सम्मानजनक नहीं, इसे मैं जानता हूँ; परन्तु इतना भारी अ यदि चुपचाप सह लोगी बेटी, तो भगवान् तुमसे रुष्ट हो ज

इससे अधिक बात मैं नहीं जानता।

मँझली बहू पृथ्वी से उठकर खड़ी हो गई, बोलीं—आप पि के समान हैं। मुझे जैसी आज्ञा देंगे, मैं बिना किसी संकोच के उस पालन करूँगी।

हरिचरण के विरुद्ध मुकद्दमा दायर हुआ। गुरुचरण ने अप पुराने जमाने की जञ्जीर बेच कर बड़े वकील को मोटी फीस अ कर दी।

निश्चित दिन को मामले की सुनवाई हुई। प्रतिवादी हरिचर उपस्थित हुआ, परन्तु वादिनी दिखाई नहीं दी। वकील ने न जा क्या कहा—सुना, हाकिम ने मुकद्दमा खारिज कर दिया। भीड़ गुरुचरण की दृष्टि अचानक जा पड़ी पारस पर। उस समय वह मुँ फेर कर मन्द-मन्द हँस रहा था।

गुरुचरण ने घर आकर सुना, मायके से किसी की जबर्द बीमारी की खबर पाकर मँझली बहू बिना नहाए-धोए, यों ही गा बुलवा कर वहाँ चली गई हैं।

पंचू की माँ हाथ-पाँव धोने के लिए पानी देने आई तो एकद रोकर कहने लगी, रात भी झूठी, दिन भी झूठा—आप कहीं अन्य चले जाएँ बड़े बाबू, इस पापी संसार में आपके रहने के लिए स्था नहीं है।

ढोल आए, नगाड़े आए, मजीरे आए—मुकद्दमा जीत जाने क खुशी में हरिचरण के घर शुभचण्डी की पूजा के ऐसे बाजे बजे ि समस्त गाँव उथल-पुथल हो उठा।

४

दो भागों में विभक्त पैतृक मकान के एक भाग में रहा हरि

चरण का परिवार और दूसरे में रहे गुरुचरण और उनकी बहुत दिनों की पुरानी दासी पंचू की माँ। दूसरे दिन सवेरे पंचू की माँ ने आकर कहा—रसोई का सब सामान जुटा दिया है बड़े बाबू।

रसोई का? ओ—हाँ—ठीक है—चलो मैं आया, कह कर गुरुचरण उठना ही चाहते थे कि दासी ने कहा—कोई जल्दी नहीं है बड़े बाबू, थोड़ा दिन चढ़ आने दीजिए, तब तक आप गंगा-स्नान कर आइए।

अच्छी बात है, जाता हूँ। कहकर गुरुचरण पलक मारते ही गंगा-स्नान के लिए जाने को तैयार हो, उठ खड़े हुए। उनके कार्य या बातों में कहीं कोई असंगति नहीं थी। फिर भी पंचू की माँ को न जाने कैसे बहुत-बुरा सा मालूम दिया। उसे रह-रह कर यही ख्याल आने लगा, जैसे ये पहले वाले वे बड़े बाबू नहीं रहे।

पंचू की माँ भीतर जाकर चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगी—कभी भला न होगा! हर्गिज भला न होगा! इसका दण्ड भगवान् ही देंगे!

किसका भला न होगा और किसको भगवान दण्ड देंगे ही देंगे, ठीक समझ में नहीं आया, परन्तु उस दिन छोटे बाबू की ओर से झगड़ा करने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ।

इसी तरह दिन कटने लगे।

गुरुचरण की एकमात्र सन्तान विमल अच्छी सन्तान नहीं है, वे इस बात को भलीभाँति जानते थे। कई महीने पहिले वह कुछ घण्टों के लिए एकबार घर आया था, तब से उसके दर्शन नहीं हुए। उस बार वह एक बैग में छिपा कर जाने क्या-क्या रख गया था। उसके चले जाने पर गुरुचरण ने पारस को बुलाकर कहा था, देख तो बेटा, इसमें क्या है? पारस ने अच्छी तरह देखभाल कर कहा था, कुछ काग़ज़ात हैं, शायद दस्तावेज होंगे। ताऊजी, इन्हें जला दूँ?

गुरुचरण ने कहा था—यदि आवश्यक हुए तो

पारस ने कहा था—आवश्यक तो हैं ही, परन्तु विमल भय्या के लिए शायद अनावश्यक हैं। इस आफत को घर में रखने की आवश्यकता ही क्या है ?

गुरुचरण ने आपत्ति की थी, बिना जाने नष्ट नहीं करने चाहिए पारस, किसी का सत्यानाश भी हो सकता है। इन्हें तू कहीं छिपा कर रख दे बेटा, पीछे देखा जाएगा।

इस घटना की उन्हें याद ही नहीं थी। आज प्रातःकाल गंगा-स्नान से लौटकर जब रसोई बनाने जा रहे थे कि अचानक बैग लिए हुए पारस, हरिचरण, गाँव के और भी कई लोग तथा पुलिस आ खड़ी हुई।

घटना संक्षेप में इस प्रकार है कि विमल डकैती का मुलजिम है, फिलहाल वह फरार है। अखबार में पढ़ कर पारस ने पुलिस को सब बातें जता दी हैं। बैग अब तक उसी के पास था। विमल खराब लड़का है, शराब पीता है, आनुषंगिक और भी अनेक दोष हैं उसमें। कलकत्ते रह कर कोई साधारण-सी नौकरी करके वह यह सब काम किया करता है। परन्तु वह डकैती भी कर सकता है, ऐसा सन्देह पिता के मन में कभी स्वप्न में भी नहीं हुआ। कुछ देर तक वे एकटक पारस के चेहरे की ओर देखते रहे, तदुपरान्त उनकी निष्प्रभ, निर्निमेष दोनों आँखों से झर-झर आँसू टपकने लगे। बोले—सब सच है, पारस ने एक बात भी झूठी नहीं कही है !

दरोगा ने और भी दो-चार बातें पूछ कर उन्हें छुट्टी दे दी। जाते समय उसने अचानक झुककर गुरुचरण के पाँव छुए और कहा—आप आयु में बड़े और ब्राह्मण हैं, मेरा अपराध ध्यान में मत लाइएगा। इतने भारी दुःख का काम मैंने इससे पहले कभी नहीं किया।

और भी कई महीने बीत जाने पर समाचार मिला, विमल को सात वर्ष की सजा हो गई है।

५

फिर ढोल, नगाड़े और मजीरे बजाकर समारोह पूर्वक शुभचण्डी पूजा की तैयारियाँ होने लगीं। पारस ने कहा—पिताजी, यह सब रहने दें।

क्यों ?

पारस ने कहा—यह मुझसे सहा नहीं जाएगा।

पिता ने कहा—अच्छी बात है, सहन न कर सको तो आज का दिन कलकत्ते जाकर घूम-फिर कर बिता आओ। जगन्माता की पूजा है—धर्म-कर्म में विघ्न मत डालो।

कहना न होगा कि धर्म-कर्म में कोई विघ्न न पड़ा।

दसेक दिन पश्चात्, एक दिन सवेरे गुरुचरण के घर की ओर अचानक शोर-गुल और चीख-पुकार सुनाई दी, और कुछ देर बाद ग्वालिन रोती हुई आ खड़ी हुई। उसकी नाक से खून बह रहा था। हरिचरण ने घबराते हुए पूछा—खून कैसे आ गया मोक्षदा ? क्या बात है ?

रोने का शब्द सुनकर घर के सभी लोग आ पहुँचे। मोक्षदा ने कहा—दूध में पानी मिलाया था, इसीलिए बड़े बाबू ने लात मार कर मुझे गड्ढे में गिरा दिया।

हरिचरण ने कहा—किसने, किसने ? हट...

पारस ने कहा—ताऊजी ने ? झूँठ बोलती है।

छोटी वहू ने कहा--जेठजी औरतों के शरीर से हाथ लगाएँगे ? तू क्या सपना देख रही है दूध वाली ?

उसने अपने शरीर पर लगे कीचड़-मिट्टी को दिखाते हुए देवी-देवताओं की शपथ खाकर कहा कि सच्ची वात है।

'इञ्जक्शन आर्डर' की कृपा से दीवाल का उठना तो वन्द होगया था, परन्तु आँगन के गड्ढे सव ज्यों के त्यों वने हुए थे, भरे नहीं थे। गुरुचरण के लात मारने मे उन्हीं में से एक में जा गिरने पर उसे चोट आगई थी।

हरिचरण ने कहा, चल मेरे साथ, नालिश कर दे।

स्त्री ने कहा, कैसी असंभव वात कहते हो तुम ! जेठजी स्त्रियों के शरीर पर हाथ लगाएँ ? झूँठ वात है।

हरिचरण ने कहा, झूँठी होगी तो हार जाएगी। परन्तु भय्या के मुँह से तो झूँठ नहीं निकल सकता। मारा होगा तो उन्हें सजा हो जाएगी।

हुआ भी यही। भय्या के मुँह से झूँठ नहीं निकला। अदालत के न्याय से उनके ऊपर दस रुपया जुर्माना होगया।

इस वार शुभचण्डी की पूजा तो नहीं हुई, परन्तु दूसरे दिन देखा गया कि कुछ लड़के झुण्ड वाँधकर गुरुचरण के पीछे-पीछे शोर-गुल मचाते एव वकते हुए चले जारहे हैं। ग्वालिन को मारने का गीत भी इतने ही में वन गया है।

रात के लगभग आठ वजे होंगे। हरिचरण की वैठक भरी हुई है। गाँव के मुरव्वी लोग आजकल यहीं आने लगे हैं। अचानक एक आदमी ने आकर एक वड़े मजे का समाचार सुनाया—'लुहारों के लड़कों ने विश्वकर्मा-पूजा के उत्सव में कलकत्ते से दो खेमटा नाचने वाली वुलाई हैं, उन्हीं के नाच की महफिल में गुरुचरण वैठे हुए हैं !'

हरिचरण हँसते-हँसते लोट-पोट होगया। बोला, पागल है! पागल है! इसकी बात सुनी! भय्या खेमटा नाच देख रहे हैं! किस चण्डूखाने से आ रहे हो अविनाश?

अविनाश ने शपथ खाकर कहा, अपनी आँखों से देख आया हूँ।

एक आदमी दौड़ा गया—सच्ची खबर लाने के लिए। दसेक मिनट बाद वह लौट आया, बोला, हाँ, एकदम सच बात है, और केवल नाच ही नहीं देख रहे। अपितु रूमाल में बाँधकर उन्हें न्यौछावर देते हुए भी वह अपनी आँखों से देख आया है।

बस, फिर क्या था, एक जोर का शोर-गुल उठ खड़ा हुआ। किसी ने कहा, किसी दिन ऐसा ही होगा—यह तो जानी हुई बात थी। कोई कहने लगा, जिस दिन बिना अपराध के स्त्री के शरीर पर हाथ लगाया था, उसी दिन हम समझ गए थे। एक ने लड़के की डकैती का उल्लेख करते हुए कहा, उसी से पिता के चरित्र का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार न जाने कितनी भाँति की बातें होने लगीं।

आज, कुछ बोला नहीं तो केवल एक हरिचरण। वह अन्यमनस्क सा होकर चुपचाप बैठा रहा। उसे न जाने कैसे आज मानो बचपन की याद आने लगी—क्या ये ही उसके भय्या हैं? क्या ये ही गुरुचरण मजूमदार हैं?

७

रात के लगभग ढाई बजे होंगे; परंतु नाच समाप्त होने में अब भी देर है विश्वकर्मा-पूजा शीघ्र ही समाप्त हो चुकी थी, परन्तु उसकी 'जूनी बाकी' अब भी चल रही थी, जिसे भक्तगण शराब पीकर, मांस खाकर तथा वेश्या नचा कर दक्ष-यज्ञ के रूप में पूरा कर रहे थे।

अधिकांश व्यक्ति अपना होश-हवास खो बैठे थे और उन्हीं के बीच बैठे हुए मुस्कुरा रहे थे वृद्ध गुरुचरण।

इतने में एक व्यक्ति चादर से मुँह ढाँके हुए वहाँ आया और उसने धीरे से उनकी पीठ पर हाथ रख दिया। वे चौंक पड़े, बोले, कौन?

उसने कहा, मैं हूँ पारस। ताऊजी, घर चलिए।

गुरुचरण ने तनिक भी आपत्ति नहीं की, बोले, घर? चलो।

उत्सव-मंच का थोड़ा-सा क्षीण प्रकाश मार्ग पर आ रहा था, वहाँ पहुँच कर पारस निर्निमेष दृष्टि से ताऊ के चेहरे की ओर देखने लगा। आँखों में वह ज्योति नहीं, चेहरे पर वह तेज नहीं, नीचे से ऊपर तक पूरा-का-पूरा मनुष्य भूतावृष्टि-सा होगया है। इतने दिनों बाद आज उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे; और इतने दिनो बाद आज इसकी आँखें देख सकीं कि ताऊजी में लोगों के आगे लज्जित होने योग्य कोई वस्तु शेष नहीं रही है। इस अर्द्ध-सचेतन शरीर को छोड़कर वे कहीं अन्यत्र चले गए हैं। उसने कहा, आपकी काशी जाने की बड़ी आकांक्षा थी ताऊजी, चलिएगा?

गुरुचरण दरिद्र की भाँति बोल उठे, जाऊँगा पारस, जाऊँगा, परन्तु ले कौन जाएगा मुझे?

पारस ने कहा, मैं ले जाऊँगा ताऊजी!

तो चल एकबार, घर चलकर चीज-वस्त ले आएँ जाकर।

पारस ने कहा, नहीं ताऊजी, अब उस घर में नहीं जाना है। वहाँ का अब कुछ भी नहीं चाहिए हमें।

गुरुचरण को अचानक जैसे चेत आगया, अब चुप रहकर बोले, कुछ नहीं चाहिए? उस घर का अब हम कुछ भी नहीं चाहते?

पारस ने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा, नहीं ताऊजी, कुछ

नहीं चाहिए। उन चीजों को लेने वाले और बहुत लोग वहाँ हैं, चलिए।

चलो, कहकर गुरुचरण ने पारस का हाथ पकड़ लिया और जनशून्य अन्धकारमय मार्ग से वे दोनों रेलवे स्टेशन की ओर चल दिए।

श्रान्त पथिक



१

उसका नाम था लावण्य और उसकी स्त्री का प्रभा। दाम्पत्य-जीवन के मधुर संयोग के फल से चाँद जैसे एक सुन्दर शिशु ने उसकी गोद को उजाला बनाया था। बहुत सोच-विचार कर, माता-पिता के अनेक तर्क-वितर्कों के पश्चात् स्थिर हुआ—इस प्रथम स्वर्गीय सम्पत्ति का नाम रक्खा जाना चाहिए—सुधा। मित्रमण्डली ने परिहास में ही इस नाम का समर्थन किया—हाँ, यही ठीक है। लावण्य—प्रभा के संयोग से अमृत बूंद चू कर आई है, उसका नामकरण 'सुधा' ही सर्वथा उपयुक्त है।

वे बड़े सुख में ही थे। किसी प्रकार का कष्ट उन्हें नहीं था। किसी एक अशुभ क्षण में स्त्री प्रभा के प्रस्ताव पर लावण्य को धन की खोज में बाहर निकलना पड़ा। कुछ भी क्यों न हो, उसे मुँह में डालकर संसार के कोने-कोने में घूम कर आया जा सकता है, परन्तु इस कमल के फूल जैसे शिशु को भला उस तरह कैसे रक्खा जा सकता है ? राम-राम !

गाने योग्य मधुरकण्ठ होने के कारण धन

र्जन करने में लावण्य को अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। शीघ्र ही राज परिवार में वंशीवादक एवं राजकन्या के सुमालिका के लिए संगीत-शिक्षक के रूप में उसे निमंत्रण किया गया। सौभाग्य समझकर दो में से किसी ने भी इसमें बाधा न दी। इसे कहते हैं अदृश्य का परिहास !

नौकरी के पहले ही दिन घर के आँगन में पाँव बढ़ाते हुए न जाने क्यों, लावण्य का हृदय किसी आशङ्का से काँप उठा। पलट कर खड़े होते हुए उसने कहा—रहने दे प्रभा ! यह पराई-दासता की आवश्यकता नहीं। हम आनन्द में हैं।

प्रभा हँसती हुई बोली—तुम कैसे हो जी ? वचन देकर बात न रक्खोगे ?

लावण्य साँस छोड़कर बोला—मन बहुत व्याकुल हो उठा है प्रभा ! ऐसा प्रतीत होता है कि संसार में हमारी शान्ति यहीं तक है।

सान्त्वना के स्वर में पत्नी ने कहा—छिः ऐसी बात मत कहना। कोई नया काम शुरू करने पर ऐसा ही लगता है। तनिक देखो तो इधर इसकी ओर। आनन्द में रखते हुए भी अच्छा खिलाने-पिलाने की इच्छा क्या नहीं होती ?

लावण्य फिर और कुछ न बोला। साँस छोड़कर गन्तव्य स्थान की ओर चल दिया। हाय प्रभा ! उस दिन यदि केवल अपनी ही भलाई तू न देखती !

२

दिन भी बीतते हैं, महीने भी और वर्ष भी बीत जाते हैं, परन्तु लावण्य के मुख की विषादरेखा मिटी नहीं, अपितु तरल एवं अस्पष्ट से घनीभूत तथा स्पष्ट हो चली। प्रभा बुद्धिमती है, अन्य सभी ओर उसकी

तीक्ष्ण दृष्टि रहती है; परन्तु न जाने क्यों, इस ओर से वह अपनी दृष्टि हटाए ही रही।

फिर भी उस दिन उसके लक्ष्य में कुछ आया, जिस दिन प्रत्याहिक का काम सिर पर था और सुधा की मधुर माँग को तुच्छ करके, हताश एवं निश्चेष्ट भाव से लावण्य ने खाट को पकड़ लिया। उसी दिन पहिली बार उसने आगे बढ़ कर पूछा—तुम्हें क्या होगया है जी?

आँखों पर हाथ मल कर हटाते हुए लावण्य ने कहा—कहाँ? कुछ भी तो नही।

इसके पश्चात् अचानक मस्तक उठाते हुए बोला—अच्छा प्रभा यदि कोई तुम्हारे सामने मेरी बुराई करे, तो तुम क्या करोगी?

अरे राम, यह कैसी बात है?

दुखभरी हँसी हँसते हुए लावण्य बोला—कहता तो कोई नही परन्तु मानलो यदि कोई यह कहे कि तुम्हारा पति पर-स्त्री-गामी है अथवा ऐसा ही कुछ, तो...?

प्रभा ने हँसी में भर कर कहा—यह कहो कि मजाक कर रहे हो, मैंने मन में सोचा था कि ..

आग्रह पूर्वक उसका हाथ पकड़ता हुआ लावण्य बोला—कहो कहो, सच हो अथवा झूठ, मैं सुनना चाहता हूँ—उस स्थिति में तुम क्या करोगी?

प्रभा बात को तुच्छता से उड़ाती हुई बोली—तो बात को हँस कर उड़ा दूँगी, और क्या?

आह, बच गया!—कह कर लावण्य ने आग्रह पूर्वक पत्नी को खींचकर अपनी छाती से लगा लिया।

मुँह से चाहे कितना भी क्यों न हँसे, उसी दिन से प्रभा के हृदय में एक न जाने कैसी आँधी की लहर उठने लगी।

३

संसार से ऊपर यदि कोई आश्चर्य की वस्तु होती है तो वह है राजे-रजवाड़ों की झक ! उसी झक के वशीभूत होकर एक दिन राजकुमारी सुमालिका ने ज़िद पकड़ ली कि संगीत-शिक्षक के अन्तःपुर (स्त्री) से उसका परिचय होना आवश्यक है। बार-बार अनेकों प्रकार की आपत्ति, बहाने आदि समाप्त हो चुकने पर एक दिन ऐसा आगया कि या तो वे स्पष्ट रूप से स्वीकार करलें अन्यथा उनके टूटे-फूटे घर में हाथी घुसेगा—अन्य कोई मार्ग नहीं रहा। तब निरुपाय लावण्य गृहिणी के साथ एक बार बात कह देने से लौटना चाहने लगे। परन्तु अपनी परिचारिका द्वारा समाचार भेज कर सुमालिका ने उनका वह मार्ग भी बन्द करा दिया। प्रभा ने कहला भेजा—अरे वाह, वे आवें, भला मैं क्या मना कर सकती हूँ ? यह तो अत्यन्त प्रसन्नता की बात है।

लावण्य ने बात सुनी, परन्तु पत्नी का सरल आवाहन चाहे जितना भी बड़ा हो, उसे वह न जाने क्यों उतना मधुर नहीं लगा।

कूड़े-कर्कट वाले घर में चाँदनी को प्रविष्ट कर लावण्य प्रतीक्षा में रुका नहीं रहा, अनेक कामों का बहाना कर उसने अपने आपको बचा लिया। उनके जाने की राह देखती हुई सुमालिका बोली—परंतु आप हैं बड़ी सौभाग्यवती !

मुस्कुराती हुई प्रभा बोली—चुप भी रहिए, ऐसी बातें न कहिए; क्या आपसे भी अधिक ?

राजकन्या ने साँस छोड़ते हुए कहा—अवश्य ! ऐसे सर्वगुण सम्पन्न जिनके पति हैं, वे सौभाग्यवती नहीं तो क्या हैं ?

प्रभा मुँह दबाकर हँसती हुई बोली—यह गर्व तो मैं अवश्य कर सकती हूँ, परन्तु इच्छा करते ही महाराज ऐसा सौभाग्य आपके

लिए भी जुटा दे सकते हैं।

यह नहीं कहा कि सुमालिका तब भी अनूढ़ा है।

लज्जा से नेत्रों को नम्र करती हुई राजकन्या बोली कर तो सब सकते हैं, परन्तु केवल यही नहीं। धन से सब कुछ हो सकता है, परन्तु महत्ता नहीं खरीदी जा सकती।

उस दिन प्रभा अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुई। आज से पूर्व उसकी आँखों के सामने कभी किसी ने भी उसके पति को इस प्रकार नहीं आँका था। परन्तु दूसरे ही क्षण किसी ने उसे जैसे चाबुक मार कर पागल बना दिया—इनके मुँह से ऐसी बात क्यों निकली ?

४

दो-चार दिन बीतते-न-बीतते प्रभा के हृदय में गुप्त आशङ्का मूर्तिमान हो उठी। पति के नाम के साथ राजकन्या की ऐसी बु... अफवाह, उसके सन्दिग्ध हृदय में ऐसा समाचार लेकर पहुँची कि जि... अविश्वास के साथ हँस कर उड़ा देने की बात तो दूर रही, अ... वह गले का हार बन कर पड़ी रह गई। पति एवं सुमालिका ... व्यवहार की बात पहले मन से भगा दे सकने पर भी आज उ... धारणा और अधिक बद्धमूल होकर बैठ गई।

लावंण्य निश्चित समय पर घर लौटा, परन्तु प्रभा पूर्व दि... भाँति हँसती और बातें करती हुई उसका स्वागत न कर सकी ... प्राण के दीपक की ज्योति ही जब बुझ गई है तो मधुर आलो... को विकीर्ण कौन करेगा ?

समस्त कार्यों की गड़बड़ी के बीच लावण्य की दृष्टि में ... रानी की यही नीरवता आई। धीरपदों से उसने आगे बढ़ते हुए ... क्या हुआ प्रभा ? मेरी चाँदनी के बाजार में आज ...

अमा निशा क्यों ?

कोई उत्तर नहीं मिला। लावण्य फिर बोला—यह कहती हो प्रभा ! मेरे उपवन में फूले हुए ताजे गुलाब के फूल को आज कौन चुराकर ले गया है ?

परन्तु तब भी उत्तर नहीं मिला। लावण्य इस बार और आगे बढ़कर पत्नी का हाथ पकड़ने चला। बिजली की भाँति उठकर खड़ी होती हुई प्रभा ने श्लेश में कहा—प्यार करने की आवश्यकता क्या है ? राजकुमारी नाराज़ हो जाएगी !

क्षुब्ध, स्तम्भित लावण्य क्षणभर तक मौन खड़ा रहा, तदुपरान्त अत्यंत कष्ट से धीरे-धीरे बोला—सब की भाँति तुमने भी मुझ पर अविश्वास कर लिया ?

अन्याय हुआ; इतने बड़े विश्वासी के पाँवों पर प्राणों की भक्ति का उपहार चढ़ा देना उचित था !

चञ्चल चरणों से पलट कर खड़े होते हुए लावण्य बोला—रहने दो, अब और कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं चला, परन्तु स्मरण रक्खो, किसी बात में विश्वास खोकर कष्ट पाने के बदले विश्वास रखना बहुत अच्छा है।

नहीं कहा जा सकता, बात की इस चोट ने प्रभा के मनोगमन में तीव्र अर्त्तनाद का प्रवाह किया अथवा नहीं। परंतु कोई बाहरी चञ्चलता दिखाई नहीं दी। लावण्य चला गया।

५

लम्बे बारह वर्ष बीत गए हैं। लावण्य जो गया तो फिर लौटा ही नहीं। जाति-बिरादरी वालों के अनुरोध पर प्रभा पति का काल्प-

निक पुतला बनवाकर तथा उसे विधवत् जलवाकर विधवा बनगई है। इस लोगों की दृष्टि में, समाज के विचार में वह ब्रह्मचारिणी है। अकारण ही पति के ध्यान में जीवन व्यतीत करना उसका एकमात्र लक्ष्य है।

समय के आवर्तन में और भी बारह वर्ष व्यतीत हो गए। काल के शासन में प्रभा आज प्रौढ़ता की गम्भीर नौका पर आरूढ़ है, निष्ठा की माधुर्यमयी मूर्त्ति के रूप में।

उस दिन पुत्र-पौत्र से घिरी प्रभा मकान की अटारी पर बैठी हुई अतीत-जीवन के इतिहास को नए जीवन के बीच ढाल रही थी।

नौकर ने आकर एक पत्र दिया, प्रभा ने पूछा—किस की चिट्ठी है भजन?

आपकी!

मेरी?—देखूं! कहकर प्रभा आश्चर्य से पत्र को खोलकर ढ़ने लगी—

"दीदी।"

जीवन मृत्यु के तटपर खड़ी होकर आज नए सिरे से अपने लोगों के बहुत दिनों के पुराने परिचय को सजीव करने जा रही हूँ। पता नहीं, आप लोगों की परिचित कलङ्किनी की कालिमा धो-पोंछ-कर साफ कर, अपने वक्ष से गोद में ले सकूंगी अथवा नहीं?

सम्भवत: प्राप्ति के नशे में पागल होकर ही अनूढ़ा के एकमात्र आश्रय-स्थल पित्रालय को त्यागकर चली गई थी, परन्तु वह मेरी निष्फल यात्रा थी। सच कहने में क्या है। जिस दिन आप लोगों से सम्पूर्ण सम्बन्ध तोड़ा, उस दिन से मैंने भी उनका दर्शन नहीं पाया फिर भी, एक दिन उन्हें पाया था; आजन्म दृढ़ संकल्प के विरु मस्तक ऊँचा किए हुए लालसा की रस्सी में यदि उन्हें उस दिन बाँ

कर न रखना चाहती तो गर्व से कह सकती हूँ कि वे अकेले मेरे ही रहते। परन्तु, हाय री, नारी की दुर्बलता !

जाने दो, साधक तो चले गए हैं—अपनी साधना को पीछे छोड़ कर ! उन्हीं की दी हुई रङ्गीन मिट्टी की छाप से आज मेरा सम्पूर्ण शरीर रङ्गा हुआ है। मैंने पाया है, न पाने के बीच भी हृदय-देवता को मन में बाँध रक्खा है। संसार के सामने से वे भाग सकते हैं। क्यों कि संसार भी छोटा-सा है, परन्तु मेरे विस्तृत अन्तर में उन्हें सदैव बँधा रहना पड़ेगा। यही मेरा प्राप्त धन है।

मैं सचमुच उन्हें प्रेम करती थी, परन्तु उन्हें लेकर गृहस्थी करूँगी, यह धारणा एक दिन को छोड़कर, फिर कभी भी मेरे मनमें नहीं आई। कारण वही प्रेम सच्चा है, जो कभी भी प्रतिदान नहीं चाहता, हृदय जीवनभर प्रियतम को केवल ध्यान में ही देखा करता है, जो मिलन के बिना भी सुसम्पन्न है, जिसकी सार्थकता विरह में ही है ! तुम पूछ सकती हो—क्या मैं सचमुच ही इतनी बड़ी प्रेमिका हूँ, अथवा नहीं हूँ ? अब यह साधना ही मेरे पथ भ्रष्ट-जीवन का लक्ष्य है—काम्य है !

आज मैं मृत्यु-शैय्या पर हूँ। मेरे ऊपर तुम्हारा व्यर्थ का संदेह बना रह जाएगा, अतः मृत्यु से पूर्व मैं तुम्हें यह बात बताए जाती हूँ। विदा ! परन्तु विदा लेने से पहले एक अनुरोध है—यदि कभी पति के दर्शन पाओ तो उनके पाँव पकड़ कर क्षमा की भिक्षा माँग लेना। स्मरण रखो—नारी को अभिमान, अहङ्कार कुछ नहीं रखना चाहिए, उसका धर्म केवल प्रेम ही है, केवल आत्मविसर्जन ही ! सतीलोक ? हाँ, सतीलोक में ही तब मेरी अमर आत्मा चिरशान्ति प्राप्त कर सकेगी ! प्रणाम !

आशीर्वाद की भिखारिणी
तुम्हारी छोटी बहिन—सुमालिका।

पत्र के अन्त में दूसरे के हाथ से लिखा हुआ था—

"तपस्विनी अपनी तपस्या समाप्त कर, किसी अमरलोक के लिए चली गई है। उनके विशेष अनुरोध से ही यह पत्र भेजा जा रहा है। इति।

अरण्य निवासी साधु"

प्रभा की आँखों से निकले हुए आँसू आँचल भिगो रहे थे। आज वह मार्ग भूली हुई है। इतने दिनों की बद्ध धारणा के मूल पर कुठाराघात होने के साथ-साथ उसने अपने अन्तर की प्रतिभा को भी खो दिया है। केवल सन्देह के बीज में जो दुःख है, अब देखने पर उसे उखाड़ने में और भी वेदना-दुःख है, अपितु सौगुना! सम्भवतः मृत्यु की यन्त्रणा भी इतनी तीव्र, इतनी ज्वालामयी न होगी।

पत्र सुधा के पास ही था। माता का भाव देखकर उत्सुक विस्मय से उसने पूछा क्या हुआ माँ! यह किस का पत्र है?

प्रभा बाष्परुद्ध कण्ठ से बोली—मेरी भूल तोड़ने का।

कर न रखना चाहती तो गर्व से कह सकती हूँ कि वे अकेले मेरे ही रहते। परन्तु, हाय री, नारी की दुर्बलता!

जाने दो, साधक तो चले गए हैं—अपनी साधना को पीछे छोड़ कर! उन्हीं की दी हुई रङ्गीन मिट्टी की छाप से आज मेरा सम्पूर्ण शरीर रङ्गा हुआ है। मैंने पाया है, न पाने के बीच भी हृदय-देवता को मन में बाँध रक्खा है। संसार के सामने से वे भाग सकते हैं। क्योंकि संसार भी छोटा-सा है, परन्तु मेरे विस्तृत अन्तर में उन्हें सदैव बँधा रहना पड़ेगा। यही मेरा प्राप्त धन है।

मैं सचमुच उन्हें प्रेम करती थी, परन्तु उन्हें लेकर गृहस्थी करूँगी, यह धारणा एक दिन को छोड़कर, फिर कभी भी मेरे मनमें नहीं आई। कारण वही प्रेम सच्चा है, जो कभी भी प्रतिदान नहीं चाहता, हृदय जीवनभर प्रियतम को केवल ध्यान में ही देखा करता है, जो मिलन के बिना भी सुसम्पन्न है, जिसकी सार्थकता विरह में ही है! तुम पूछ सकती हो—क्या मैं सचमुच ही इतनी बड़ी प्रेमिका हूँ, अथवा नहीं हूँ? अब यह साधना ही मेरे पथ भ्रष्ट-जीवन का लक्ष्य है—काम्य है!

आज मैं मृत्यु-शैय्या पर हूँ। मेरे ऊपर तुम्हारा व्यर्थ का संदेह बना रह जाएगा, अतः मृत्यु से पूर्व मैं तुम्हें यह बात बताए जाती हूँ। विदा! परन्तु विदा लेने से पहले एक अनुरोध है—यदि कभी पति के दर्शन पाओ तो उनके पाँव पकड़ कर क्षमा की भिक्षा माँग लेना। स्मरण रखो—नारी को अभिमान, अहङ्कार कुछ नहीं रखना चाहिए, उसका धर्म केवल प्रेम ही है, केवल आत्मविसर्जन ही! सतीलोक? हाँ, सतीलोक में ही तब मेरी अमर आत्मा चिरशान्ति प्राप्त कर सकेगी! प्रणाम!

आशीर्वाद की भिखारिणी
तुम्हारी छोटी बहिन—सुमालिका।

पत्र के अन्त में दूसरे के हाथ से लिखा हुआ था—

'तरङ्गिनी अपनी तपस्या समाप्त कर, किसी अमरलोक के लिए चली गई है। उनके विशेष अनुरोध से ही यह पत्र भेजा जा रहा है। इति।

अरण्य निवासी साधु"

प्रभा की आँखों से निकले हुए आँसू आँचल भिगो रहे थे। आज वह मार्ग भूली हुई है। इतने दिनों की बद्ध धारणा के मूल पर कुठाराघात होने के साथ-साथ उसने अपने अन्तर की प्रतिभा को भी खो दिया है। केवल सन्देह के बीज में जो दुःख है, अब देखने पर उसे उखाड़ने में और भी वेदना-दुःख है, अपितु सौगुना! सम्भवतः मृत्यु की यन्त्रणा भी इतनी तीव्र, इतनी ज्वालामयी न होगी।

पत्र सुधा के पास ही था। माता का भाव देखकर उत्सुक विस्मय से उसने पूछा क्या हुआ माँ! यह किस का पत्र है?

प्रभा वाष्परुद्ध कण्ठ से बोली—मेरी भूल तोड़ने का।

६

नीले आकाश के नीचे सागर का जल प्रत्येक ताल पर उछलता हुआ तट का मधुर आलिंगन पाने के लिए हाहाकार कर रहा था। नौमी का चाँद आकाश के नीचे था अथवा सागर के वक्ष पर अपना आसन जमाए हुए था, ठीक कहा नहीं जा सकता। कारण, एक चाँद तो आकाश पर था और हजारों चाँदों के मुखड़े सागर के जल पर नाच रहे थे। फिर किनारे पर वैसी ही चन्द्रमुखियाँ चारों ओर अपनी मधुर-चन्द्रिका को बिखेर रही थीं।

रामनवमी! त्रेतायुग के उन्हीं सनातन पुरुष का जन्मोत्सव है, जो नवीन रूप में घर-घर प्रेम की बाढ़ फैलाए हुए हैं। शोक, दुःख, वेदना—जो कुछ जीवन की अशान्ति के कारण हैं—उन्हें कल के लिए

सञ्चित रख कर आज वृद्ध से लेकर बालक तक सभी आनन्द-विभोर हैं।

मन में समझे अथवा बैठाए हुए श्रीरामचन्द्र के चरण-कमलों में नैवेद्य अर्पित करने के हेतु हृदय को जली हुई प्रभा भी जनसमूह के एक किनारे आकर खड़ी हुई थी। उसकी दृष्टि दुखभरी प्रार्थना के बोझ से स्थिर थी—अविकम्पित।

दूर खड़ा हुआ एक संसार-विरागी उत्सुक उत्फुल्ल नेत्रों से मुग्धा की इस मानसी-पूजा को देख-देखकर पुलकित हो रहा था। अचानक न जाने क्या सोचकर वह समीप आकर बोला—पति के जीवित रहते हुए भी हिन्दूकुल-ललना का यह वेश अत्यन्त उत्तम है।

रोष से पलटकर प्रभा ने रूखे स्वर में कहा—संसार से बाहर खड़े होकर अपने लिए जो सर्वथा अनुचित है, उसका विचार करने का साहस करना आप जैसे संसार-त्यागी के लिए भी उत्तम है।

कहने को तो प्रभा यह कह गई, परन्तु उसका भाव एकदम परिवर्त्तित होगया। वायु से प्रताड़ित वेतरुलता की भाँति उसका सम्पूर्ण शरीर काँप उठा। इसके उपरान्त ही उसके कण्ठ से निकला—कौन, कौन होजी तुम ?

दूसरे ही क्षण चेतना खोकर वह पृथ्वी पर लोट गई।

संन्यासी उसके मस्तक को गोद में रखकर चेतना लाने का प्रयत्न करने लगा।

बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य-साधन के फल से हो अथवा नारी की स्वभावजन्य दुर्बलता के कारण, पुरुष का स्पर्श पाते ही प्रभा का शरीर संकुचित होगया। सिहर कर उसने आँखें खोलने का प्रयत्न किया। दूसरे ही क्षण अश्वस्त साँस छोड़कर वह निश्चल होगई।

संन्यासी ने उसके इस भाव परिवर्त्तन को चुपचाप देखा। क्षण-भर के लिए उसके चेहरे पर भी एक अपूर्व रस का समावेश हुआ।

परन्तु दूसरे ही क्षण संयम की कठोर चाबुक खाकर वह संन्यासी अपने मनरूपी अश्व के वेग को मोड़कर, प्रभा के मस्तक को पृथ्वी पर रख, उठ खड़ा हुआ। तत्पश्चात् लाल नेत्रों से देवमूर्त्ति की ओर देखकर जैसे उसकी दुर्बलता के वे ही कारण हों—वह पुनः वन-स्रोत में अदृश्य होगया।

प्रभा उठकर बैठ गई। चंचल नेत्रों से चारों ओर देखती हुई वह चीख पड़ी अजी, तुम कहाँ हो—तुम कहाँ हो?

× × × ×

उस दिन बड़ी रात तक लोगों ने एक नारी को हाथ में दीपक लिए इधर-उधर कुछ ढूँढ़ते हुए देखा था। उसकी अनिर्दिष्ट यात्रा का फल चाहे जो भी हो, संन्यासी लावण्य चाहे कितना ही बड़ा संन्यासी क्यों न हो, हम जोर देकर यह कह सकते हैं—इस भूले हुए पथिक के करुण-आह्वान का उत्तर उसे देना ही होगा। वह अपने हृदय-देवता को पुनः अवश्य प्राप्त करेगी...।



पचास वर्ष पहिले



यह लुटेरों की कहानी है। इन लोगों के सम्बन्ध में सुना तो बहुतेरों ने है और जो मुझ जैसे बूढ़े हैं, उन्होंने बहुतों को देखा भी है। पचास-साठ वर्ष पहले तक पश्चिम बंगाल अर्थात् हुगली, वर्दवान आदि जिलों में, इन लोगों का बहुत अधिक उपद्रव मचा रहता था।

उससे भी पूर्व, अर्थात् दादी-नानी के मुंह से सुना है कि लोगों के चलने-फिरने की कोई भी राह अथवा सड़क ऐसी न थी, जिस पर सन्ध्या हो जाने पर चलना खतरे से बाहर हो। ये दुष्ट लुटेरे जैसे लोभी थे, वैसे ही निर्दय तथा निष्ठुर भी। ये झुण्ड बनाकर सड़क के सहारे वृक्षों की आड़ में, झाड़-झंखाड़ में छिपे रहते थे। इनके एक हाथ में बड़ी-सी लाठी और दूसरे हाथ में कच्चे बांस के भारी तथा छील कर बनाए गए छोटे-छोटे टुकड़े रहा करते थे। इन टुकड़ों को 'पाबड़ा' कहा जाता था।

मार्ग पर चलने वाला यात्री जब कुछ आगे बढ़ जाता था, तब ये लुटेरे पीछे से निकल कर, उसके

पाँवों को ताक कर, उसी पात्रड़े को खींच कर बड़ी जोर से मारते थे। इनका निशाना अचूक होता था। अस्तु जब अकस्मात असावधानी में चोट खा कर वह पथिक मुँह के बल पृथ्वी पर गिर पड़ता था, तब इन लुटेरों का झुण्ड दौड़ कर उसके पास जा पहुँचता था एवं उसे लाठियों से पीट कर जान से मार डालता था। ऐसा करने में ये लुटेरे न तो कुछ हिचकते थे और न सोच-विचार करते थे, ये किसी को भी नहीं छोड़ते थे। इन लोगों के हाथों प्राण गँवाने वाले अनेक लोगों की मृत-देह को मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है।

बाल्यावस्था में मुझे मछली पकड़ने का बड़ा शौक़ था। उसे सनक कहना भी कुछ गलत न होगा। बड़ी-बड़ी मछलियाँ तो नहीं, परन्तु छोटी जाति की मछलियों को मैं अवश्य फँसा लेता था। बहुत सबेरे ही 'छीप' हाथ में लिए हुए नदी के तट पर मैं पहुँच जाया करता था।

हमारे गाँव के सहारे एक छोटी-सी उथली नदी थी। उसका विस्तार भी कुछ अधिक चौड़ा न था और उसमें पानी भी कहीं कमर से अधिक गहरा न था। नदी के पानी में सिवार की भरमार थी। उसी सिवार में जहाँ कहीं बीच-बीच में कुछ खुली हुई जगह थी, छोटी-छोटी मछलियाँ किलोलें किया करती थीं। मैं बंसी में आटे की गोली लगा कर उसे पानी में डाल देता और उसी स्थान पर बैठा रहता था। इस प्रकार मुझे मछली पकड़ने में बहुत आनन्द आया करता था।

नदी-तट पर मछलियों की खोज में अकेले घूमते हुए कई बार मैंने नदी के भीतर कीचड़ तथा सिवार से लिपटी हुई मनुष्यों की लाशें देखी हैं। कभी-कभी यह भी देखा है कि किसी लाश के सिर से ताजा खून निकलने के कारण वहाँ का पानी लाल हो रहा है।

नदी के दोनों किनारों पर घना जंगल और झाड़ियाँ थीं। जाने ये लुटेरे आदमी को कहाँ से मार-पीट कर लाते और इसे ८

जंगल में गाड़ देते अथवा नदी की सिवार में दबा देते थे। मैंने यह कभी नहीं देखा कि इन लाशों का अथवा लुटेरों का पता लगाने के लिए पुलिस आई हो अथवा गाँव का ही कोई आदमी थाने में रिपोर्ट करने के लिए गया हो। यह झंझट कौन करे, इस मुसीबत को कौन मोल ले! गाँव के लोग सदैव से यही सुनते आए हैं कि पुलिस के साथ रगड़ नहीं करनी चाहिए। पुलिस के पास जाना भी अपनी आफत को बुलाना है। बाघ के सामने पड़कर दैवयोग से चाहे प्राण भले ही बच जाएँ, परन्तु पुलिस के पल्ले पड़ कर कभी नहीं बच सकते। इसीलिए यदि कभी किसी की दृष्टि में ऐसी लाश पड़ भी जाती तो वह उस ओर से आँखें फेर कर चुपचाप चला जाता था। इसके उपरान्त रात के समय सियारों के झुण्ड निकल कर उस लाश को खूब धूमधाम से खा-पीकर तथा नदी में पानी पीकर एवं मुँह धोकर अपनी माँद में चले जाया करते थे। लाश का कही चिह्न तक नहीं रहता था।

एक दिन मेरी भी सम्भवतः यही दशा हो गई होती, परन्तु मैं च गया। वही वृत्तान्त कह रहा हूँ।

उन दिनों मेरी आयु बारह वर्ष की थी। छुट्टी का दिन था। सबेरे-सवेरे घर में छिप कर बैठा हुआ पतङ्ग बना रहा था। इतने ही में उस मुहल्ले के नयन बागदी की आवाज सुनाई पड़ी। वह मेरी दादी से कह रहा था—माताजी, आज मुझे पाँच रुपए दे दो। मैं तुम्हारे पोते को दूध पिला कर उन्हें चुका दूँगा।

मेरी दादी नयनचन्द को बहुत चाहती थी। उन्होंने पूछा—आज अचानक ही तुझे रुपयों की आवश्यकता क्यों आ पड़ी रे नयन?

वह बोला—एक अच्छी-सी गाय लाऊँगा माताजी! वसन्तपुर में मेरी बुआ रहती हैं। फुफेरे भाई ने यह कहला भेजा है कि चार-पाँच गाएँ रखना उसे खल रहा है। वह एक गाय मुझे देना चाहता है। मैं जानता हूँ कि वह मुझ से गाय की कीमत नहीं लेगा, फिर भी

चार-पाँच रुपये साथ ले जाना ठीक रहेगा।

दादी ने और कुछ न कहकर उसके हाथ पर पाँच रुपये रख दिए। वह प्रणाम करके चला गया।

मैंने सुन रक्खा था कि वसन्तपुर में 'द्वीप' बनाने के लिए अच्छा बाँस मिलता है, अतः मैंने चुपचाप नयन का पीछा करना शुरू कर दिया। लगभग दो मील कच्ची सड़क पार करने के उपरान्त ग्रांडट्रंक-रोड से वसन्तपुर जाने का मार्ग आता है।

गाँव से लगभग एक मील निकल जाने पर नयन ने अचानक पीछे घूमकर देखा। मुझे देखकर यह बहुत नाराज हुआ। बोला, मेरे लिए द्वीप के योग्य बाँस की दस अच्छी कमचियाँ लेता आवेगा। इस पर भी मैं किसी तरह लौटने को तैय्यार नहीं हुआ। मैंने साथ ले चलने के लिए उसकी बहुत खुशामद की, परन्तु उसने एक न सुनी। अंत में वह मुझे पकड़ कर जबर्दस्ती घर लौटा लाया।

मेरे रोने-धोने से दादी तो कुछ नरम हुई, परन्तु नयन मुझे साथ ले जाने के लिए किसी भी तरह तय्यार नहीं हुआ। बोला, माताजी, आने-जाने में केवल आठ कोस का रास्ता है, चाँदनी रात होने के कारण खूब खुशी से ले भी जा सकता था, परन्तु रास्ता ठीक नहीं है—खतरा है। यदि मैं समय से न लौट सका तो आप ही कहिए, मैं गाय को सँभालूँगा, या लड़के को सँभालूँगा अथवा स्वयं को सँभालूँगा ?

रास्ते का खतरा क्या है, इसे इस ओर के सभी लोग जानते हैं। दादी भी एकदम 'न' कर बैठीं। मुझसे बोली—तू कभी नहीं जा सकता। यदि चोरी से भाग जाएगा तो मैं तेरे मास्टर को चिट्ठी लिख कर कहला भेजूँगी, वे कम-से-कम पचास बेंत जरूर मारेंगे।

निरुपाय होकर दूसरा उपाय खोज निकाला। नयन के चले जाने पर मैं तालाब में स्नान करने का बहाना कर, शरीर में तेल

मलता हुआ, कन्धे पर अँगौछा डालकर घर से निकल पड़ा। नदी के किनारे-किनारे वन-जङ्गल तथा आम-कटहल के बागों में होता हुआ कोई दो-ढाई मील तक दौड़ता चला गया। जिस स्थान पर हमारे गाँव का कच्चा रास्ता समाप्त होकर ग्राण्डट्रकरोड की पक्की सड़क में आ मिला था, वहाँ जाकर जब खड़ा हुआ तो लगभग दस मिनट बाद ही मुझे नयन आता हुआ दिखाई दिया।

मुझे देखकर पहले तो वह बहुत बका-झका अन्त में यह जानकर कि मैं कौन-सा बहाना बना कर यहाँ आया हूँ, हँस पड़ा। बोला, अच्छा चलो देवता, जो भाग्य में है, वह होगा। इतनी दूर आकर तो अब लौट भी नहीं सकता।

नयन ने सात गाँव की दूकान से लाई और बताशे खरीद कर मेरी धोती के छोर में बाँध दिए, मेरे खाने के लिए। तदुपरान्त चलते-चलते हम लोग दोपहर के समय बसन्तपुर में नयन की बूआ के घर पहुँचे। नयन की बुआ दरिद्र नहीं थीं, खाने पहनने का कोई कष्ट न था।

मकान के नीचे ही कुन्ती नामक नदी बहती थी। नदी छोटी थी, परन्तु पानी उसमें इतना था कि ज्वार-भाटा आया करता था। मैं नदी में जाकर स्नान कर आया। बुआ की बड़ी बहू केले के पत्ते में चिउड़ा, गुड़, दूध और केला आदि फलाहार का सामान परोस गई।

भोजन के पश्चात् नयन की बुआ ने कहा—बालक चार-पाँच कोस पैदल चलकर आया है, अभी फिर लौटकर जाना भी होगा। अतः अब कुछ देर आराम करलो भाई, धूप कम हो जाने पर तीसरे पहर चले जाना।

बुआ का छोटा लड़का मेरी फरमाइश पूरी करने—अर्थात् मेरे लिए बाँस की कमचियाँ लाने चला गया।

नयन और मैं दोनों ही पैदल चलने के कारण इतने थक गए थे

कि सो गए। हमारी आँख तब खुली, जब चार बज चुके थे। दिन की ओर देख कर नयन कुछ चिंतित सा दिखाई दिया, परंतु मुँह से उसने कुछ नहीं कहा। दस-पन्द्रह मिनट में ही हम लोग वहाँ से चल पड़े। चलते समय नयन पाँव छूकर बुआ को पाँच रुपये देने लगा, परतु उन्होंने लिए नहीं, लौटा दिए। बोली—अपने बच्चों को इन रुपयों की मिठाई ले देना।

मेरे कन्धे पर बाँस की कमचियों का गट्ठर था। नयन के बाँए हाथ में गाय की रस्सी तथा दाहिने हाथ में लम्बी लाठी थी। परंतु गाय को लेकर तेज नहीं चला जा सकता था। दो कोस भी हम लोग नहीं चल पाए थे कि रात हो गई और आकाश में चन्द्रमा दिखाई देने लगा। मार्ग के दोनों ओर बड़े-बड़े, पीपल, बरगद तथा पाकर के वृक्ष खड़े थे जो ऊपर जाकर परस्पर इस तरह मिल गए थे कि मार्ग में घना अंधकार छा गया था। केवल कहीं-कहीं पत्तों की फाँक से छन कर आई हुई चाँदनी का क्षीण प्रकाश मार्ग के ऊपर पड़ रहा था।

नयन ने कहा—भय्या तुम मेरी बाईं ओर आकर अपने बाँए हाथ से गाय की रस्सी पकड़ लो, मैं तुम्हारी दाईं ओर रहूँगा।

मैंने कहा—क्यों नयन दादा ?

नयन बोला, कुछ नहीं, यों ही। आओ चलें।

मैं बालक होने पर भी समझ गया कि नयन की आवाज़ में घबराहट भरी हुई है।

धीरे-धीरे पक्की सड़क छोड़कर हम लोग कच्चे मार्ग में जा पहुँचे। आस-पास का जङ्गल झाड़-झङ्खाड़ और भी घना हो गया। बहुत से पुराने पाकर के वृक्षों की पंक्ति ने ऊपर सिर से सिर भिड़ा-कर घने पत्तों का पर्दा डाले हुए कहीं फाँक तक नहीं छोड़ी थी, जिससे चन्द्रमा का प्रकाश मार्ग तक पहुँच पाता। संध्या के समय ... लड़के इसी मार्ग से अपने पशुओं को हाँकते हुए घर ले ... ए

पशुओं के खुरों से उड़ी हुई धूलि अब भी नाक तथा मुँह में भरी जा रही थी।

इसी समय सामने से कोई पचास-साठ हाथ की दूरी पर किसी का गला फाड़ कर निकलती हुई चीख सुनाई दी, बाप रे! मार डाला रे! अरे कोई बचाओ, बचाओ! साथ ही लाठियाँ बरसने का शब्द सुनाई दिया, तदुपरान्त सन्नाटा छा गया।

नयन सन्नाटे में आकर खड़ा रह गया। बोला—खत्म हो गया!

मैंने पूछा—क्या खत्म हो गया नयन दादा?

एक आदमी, कह कर कुछ देर तक वहीं खड़े रह कर उसने कुछ सोचा, फिर कहा—चलो भय्या, हम लोग तनिक सावधान होकर चलें।

गाय बाईं ओर, नयन दाहिनी ओर और मैं दोनों के बीच में, इस प्रकार हम लोग फिर आगे बढ़े।

बचपन से सुनता आ रहा हूँ, कभी-कभी लुटेरों के शिकार बने लोगों की लाशें भी देखी हैं, अत बालक होने पर भी सब समझ गया। 'अरे कोई बचाओ, बचाओ!' की करुण पुकार उस समय भी मेरे कानों में गूँज रही थी।

मैंने डरते-डरते कहा—नयन दादा, वे लोग तो सामने ही खड़े हुए हैं, हम लोग बढ़ें कैसे? अगर मारे...

नयन ने कहा—नहीं भय्या, मेरे रहते नहीं मारेंगे। वे लुटेरे हैं न, बहादुर थोड़े ही हो सकते हैं। देखते ही भाग खड़े होंगे। बड़े डरपोक होते हैं।

गाय, मैं और नयन तीनों धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। भय के मारे मेरे पाँव काँप रहे थे, सांस नहीं ले पा रहा था, ऐसी अवस्था थी। वृक्षों की छाया तथा धूलि के कारण अभी तक कुछ दिखाई भी

नहीं दिया था। पन्द्रह-बीस हाथ और आगे बढ़ते ही देखा हम लोगों के आने की आहट पाकर अथवा हमें देखकर पाँच-छै आदमी दौड़कर एक पाकर के वृक्ष की आड़ में छिप गए।

नयन ने अचानक खड़े होकर अत्यंत भयानक आवाज़ से चिल्लाते हुए कहा—सावधान ! तुम लोगों को बताए देता हूँ, ब्राह्मण का लड़का मेरे साथ है। यदि पावड़ा मारा तो तुम में से एक को भी जीवित नहीं छोड़ूँगा।

किसी ने इसका उत्तर नहीं दिया। हम लोगों ने कुछ और आगे बढ़कर देखा, मार्ग में एक आदमी मुँह के वल धूलि में पड़ा है। उसके ऊपर चन्द्रमा का थोड़ा-सा प्रकाश पड़ रहा था। नयन ने उसे झुककर देखा तथा हाय-हाय कर उठा। उस आदमी के नाक-कान और मुँह से खून बह रहा था। केवल उसके पाँव ही उस समय भी थर-थर काँप रहे थे। उसके कंधे पर भिक्षा की झोली वैसे ही लटकी हुई थी, परन्तु उसमें का अन्न धूलि में इधर-उधर बिखर गया था। उसके हाथ का एकतारा लाठियों की चोट से चूर-चूर होकर अलग पड़ा हुआ था।

नयन सीधा खड़ा हो गया। बोला—अरे पापियो! नर्क के कीड़ो, तुमने व्यर्थ ही एक भिखारी के, एक वैष्णव के प्राण ले लिए ! यह तुमने क्या कर डाला ?

नयन का पहले का वह भयानक गला जैसे अचानक वेदना से भर गया, परन्तु उधर से कोई उत्तर नहीं आया। नयन के इस दुःख और वेदना का प्रधान कारण यह भी था कि वह स्वयं एक कट्टर वैष्णव था; गुरू से कण्ठी भी ले चुका था। उसके कण्ठ में मोटे-मोटे दानों वाली तुलसीमाला पड़ी हुई थी, नाक से लेकर मस्तक तक लम्बा तिलक था एवं संपूर्ण शरीर में भाँति-भाँति की छापें लगी हुई थीं। उसके घर में एक छोटा-सा ठाकुरद्वारा भी था, जिसमें चैतन्य-

महाप्रभु का चित्र स्थापित था। एक हजार बार इष्ट मंत्र जपे बिना वह पानी भी नहीं पीता था। बाल्यावस्था में उसने पाठशाला में पहली पोथी पढ़ी थी। अब अपने ही प्रयत्न से उसने इतनी विद्या प्राप्त कर ली है कि वह छपी हुई पुस्तक अच्छी तरह बाँच लेता है। दीपक की रोशनी में ठाकुरजी के दालान में बैठ कर वह सस्ते संस्करण के विश्रामसागर, व्रजविलास आदि वैष्णव ग्रन्थों का बहुत रात बीते तक स-स्वर पाठ करता रहता है। वह माँस नहीं खाता और उसका विचार है कि आगे चल कर किसी दिन वह मछली खाना भी त्याग देगा।

नयन के वैष्णव होने का एक छोटा-सा इतिहास भी है। उस की आयु अब चालीस के लगभग है, परन्तु जब पच्चीस-तीस वर्ष की आयु थी, तब वह एक डकैती के मामले में फँस कर एक वर्ष तक हवालात और जेल में रह आया था। मेरी दादी के एक फुफेरे भाई जिले के बहुत बड़े और नामी वकील थे। दादी ने उन्हीं के द्वारा पैरवी करवा कर तथा बहुत-सा धन खर्च करके नयन को जेल से छुड़वाया था।

जेल से छुटकारा पाते ही नयन सीधा नवद्वीप (नदिया) चला गया और वहीं किन्हीं गुसाईं महाराज से मन्त्र लेकर, सिर मुँड़ा कर तथा तुलसी की माला पहिन कर गाँव लौटा। उस दिन से वह पक्का एवं कट्टर वैष्णव होगया है। नयन यदा-कदा मेरी दादी के सम्मुख पृथ्वी पर मस्तक रख कर प्रणाम कर जाया करता था। वे ब्राह्मणी विधवा थीं, नयन को छूने का अधिकार न था, अतः वह किसी भी पेड़ का पत्ता तोड़ कर उनके पाँवों के पास रख देता; दादी उस पत्ते से अपने पाँव का अगूँठा छुला देतीं तब नयन उस पत्ते को उठा कर मस्तक एवं गले से लगाकर बारम्बार कहता—माताजी, आशीर्वाद दीजिए, अबकी बार मर कर मैं किसी अच्छी जाति के घर में जन्म लूँ, ताकि आपके पाँवों की धूलि अपने हाथ से लेकर मस्तक पर

लगा सकूँ। दादी भी स्नेहपूर्वक हँसती हुई कह देती—नयन अबकी बार तू मेरे आशीर्वाद से ब्राह्मण का जन्म पाएगा।

नयन की आँखों में आँसू भर आते। वह कहता—इतनी बड़ी आशा तो मैं नहीं करता माताजी! मेरे पापों की कोई सीमा नहीं है। मैं महापापी हूँ, इस बात को कोई और चाहे न जाने, आप तो भली-भाँति जानती हैं। आपसे तो मैंने कुछ भी नहीं छिपाया है, माताजी!

दादी कहती—तेरे सब पाप नष्ट होगए हैं नयन! तेरे जैसे भक्त तथा भगवान् पर विश्वास रखने वाले मनुष्य इस संसार में हैं ही कितने! इस मार्ग को तू कभी मत छोड़ना रे, तेरे ये शुभकर्म तेरा परलोक बना देंगे। उसके लिए कुछ चिन्ता मत कर।

नयन आँखें पोंछकर चल देता। दादी जाते समय कहती—कल यहीं आकर प्रसाद पाना, देख, भूल मत जाना।

यह सब मैंने कई बार अपनी आँखों से देखा है। इसीलिए, जिन वैष्णवों की वह प्राणपण से सेवा करता है, उन्हीं में से एक का इस निर्दयता से मारा जाना देख कर यदि वह क्रोध के मारे आपे से बाहर तथा विचलित हो उठा तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी।

नयन ने कहा—बेचारा वैष्णव भिक्षा माँग कर शाम को घर लौट रहा था। पापियो, उसके पास से क्या पाने की आशा में तुमने उसकी हत्या कर डाली? दो-चार आने पैसे ही तो हाथ लगे होंगे। जी चाहता है, तुम लोगों को भी इसी तरह मार डालूँ।

इस बार वृक्ष की ओट से उत्तर आया—दो-चार आने पैसे भी कौन प्रसन्नतापूर्वक दे देता है रे? अपने पुरखों के भाग्य से इस बार तू बच गया। अपनी यह धर्म-कर्म की बातें रहने दे, जा, भाग जा।

उसकी बात पूरी होने के पहिले ही नयन जैसे शेर की भाँति गरज उठा। बोला—हरामजादो, कायरो, मैं भागूँगा? तुम्हारे भय से?

इतना कह कर अपनी अण्टी से पाँचों रुपए निकाल कर उन्हें खनखनाते हुए बोला—देखो मेरे पास इतने रुपए हैं, इन्हें मत छोड़ना, हिम्मत हो तो सब मिल कर आ जाओ और इन्हें ले जाओ । परन्तु एक बार फिर तुम्हें सावधान किए देता हूँ कि मेरे साथ जो यह ब्राह्मण का लड़का है, यदि इसके अङ्ग में तनिक भी चोट आ गई तो मैं तुम सब को सदा के लिए इसी रास्ते पर सुला दूँगा, तब घर लौटूँगा । मैं शेतला गाँव का नयन छाती हूँ, और कोई नहीं । पूछता हूँ, तुमने कभी मेरा नाम भी सुना है, या यों ही हाथ में लाठी लेकर भिखारियों को मारते हुए घूमा करते हो ? हरामजादो, तुम तो सियारों और कुत्तों से भी गए-बीते हो ।

जहाँ से पहले उत्तर आया था, उस वृक्ष के नीचे सन्नाटा छा गया, किसी ने चूँ तक नहीं की । दो-तीन मिनट तक चुप रहने के ८ नयन ने और भी अधिक कड़ी, और भी अधिक कड़वी गाली देते हुए पुकारा—क्यों रे, आओगे, या ये रुपए लेकर मैं ही घर चला जाऊँ ?

फिर भी कोई उत्तर नहीं आया । मार्ग में दो-तीन बाबड़े पड़े हुए थे । नयन ने एक-एक करके वे सब उठा लिए । फिर कहा—चलो भय्या, अब घर चलें । रात हो रही है, तुम्हारी दादी शायद चिन्ता कर रही होंगी । ये सब तो सियार-कुत्तों की औलाद हैं, मनुष्य के पास कैसे आ सकते हैं ? तुम यदि इस छीप की ही कमची को हाथ में लेकर मारने जाओ तो भी ये सब सिर पर पाँव रख कर भाग जा[illegible] भय्या !

मेरा भय दूर हो गया था एवं साहस बढ़ गया था ।

दादा ?

[illegible]—रहने दो भाई, कोई आवश्यकता

[illegible] तो नहीं करते, परन्तु मौका

[illegible]ते । यही हाल इन लोगों का

हम दोनों आगे बढ़े। नयन बिलकुल चुप था। मैंने बारम्बार कई प्रश्न किए, परन्तु उसने एक का भी उत्तर नहीं दिया। केवल हाँ या ना कह दिया करता था। कुछ दूर आगे जाकर एक बड़े वृक्ष की छाया में, खूब घने अन्धकार के बीच वह ठिठक कर खड़ा हो गया। बोला—न भय्या, आँखों से वैष्णव की हत्या देख कर, हत्यारों को उस का दण्ड दिए बिना मुझसे न जाया जाएगा। ब्राह्मण-वैष्णव के प्राण लेने का बदला मैं इन बदमाशों से अवश्य लूँगा।

मैंने पूछा—बदला कैसे लोगे नयन दादा?

उसने कहा—क्या मैं एक साले को भी न पकड़ सकूँगा? तब हम दोनों मिलकर इसी प्रकार लाठी से पीट कर उसे भी मार डालेंगे।

पीट कर मार डालने के आनन्द से मैं अत्यन्त प्रसन्न एवं उत्साहित हो उठा। मेरी समझ में जैसे यह भी कोई नए प्रकार का खेल था। इन लुटेरों के सम्बन्ध में मैंने न जाने कितनी तरह की बातें सुन रक्खी थीं, परन्तु अब जान पड़ा कि वे सब झूँठ हैं। नयनदादा ने जाने नहीं दिया, अन्यथा मैं ही पीछा करके किसी एक को तो पकड़ ही लाता...। मैंने कहा—नयनदादा, तुम एक को अच्छी तरह पकड़े रहना, मैं अकेला ही उसे पीट कर मार डालूँगा, परन्तु यदि कहीं मेरी छीप टूट गई तो?

नयन ने फिर हँसते हुए कहा– छीप की मार से मरेगा नहीं भाई, यह सोटा लो। कह कर नयन ने उन बटोर कर लाए हुए पावड़ों में से एक अच्छा-सा पावड़ा निकाला और उसे मेरे हाथ में थमाते हुए कहा—तुम गाय को पकड़ कर इसी जगह खड़े रहो भय्या, मैं अभी दो-एक को पकड़े लाता हूँ। परन्तु देखो, रोने-चिल्लाने की आवाज़ सुन कर डरना मत।

मैंने कहा—नहीं, डर की क्या बात है? मेरे हाथ में यह जो है।

तब नयन बाकी दोनों पावड़ों को बगल में दबा, बड़ी लाठी को दाहिने हाथ में ले, रास्ता छोड़कर झाड़ियों के सहारे-सहारे घुटनों के बल दोनों हाथों से चलता हुआ उसी ओर लौट चला।

लुटेरों ने समझा था कि हम लोग चले गए हैं, अतः वे निश्चित होकर लौट आए थे एवं मरे हुए भिखारी की अण्टी को टटोल कर तथा झोली को फाड़ कर यह देख रहे थे कि उसके पास क्या है। अचानक उनमें से एक ने देखा, समीप ही एक वृक्ष की आड़ में नयन खड़ा हुआ है। वह भयभीत होकर चिल्ला उठा, वहाँ कौन खड़ा है ?

नयन बोला—मैं नयन छाती हूँ। इसी तरह खड़ा रह। भागा नहीं कि मर जाएगा।

परन्तु नयन की बात पूरी होने के साथ ही मैंने बहुत से पाँवों की भागने की आहट सुनी और प्रायः उसके साथ ही अस्पष्ट आर्त्तस्वर में कोई एक व्यक्ति रो उठा तथा हड़बड़ा कर किसी झाड़ी के ऊपर गिर पड़ा।

नयन चिल्लाकर बोला—भय्या, एक साले को पकड़ लिया है, और तो सब भाग गए।

इस शुभ समाचार को पाकर मैं उसी स्थान पर खड़े होकर उछलने लगा। मैंने जोर से चिल्लाते हुए कहा—उसे यहाँ पकड़ लाओ नयनदादा, मैं पीट कर मारूँगा, तुम मत मार डालना।

नयन ने कहा—नहीं भय्या, तुम्हीं मारना।

एक और करुण शब्द सुनाई दिया, लगा, नयन ने उसके लाठी का एक हूला मारा था, इसीलिए वह आदमी फिर चिल्ला उठा। दो-एक मिनट बाद ही मैंने देखा, एक आदमी लड़खड़ाता, लँगड़ाता हुआ आ रहा है और उसके पीछे नयनचन्द है।

समीप आते ही वह व्यक्ति जोर से रोता हुआ मेरे पाँवों से लिपट गया। नयन ने लाठी का हूला मार कर, उसे उठाकर खड़ाकर

दिया। अब उस आदमी को देख कर मैं काँप उठा। उसने अपने मुँह पर कालिख पोत रक्खी थी तथा उसके बीच-बीच में चने की सफेद बिन्दियाँ लग रही थीं। वह जैसा दुबला और शक्तिहीन था, वैसा ही लम्बा भी। वह सैकड़ों जगह से फटे हुए एक चीथड़े को लपेटे था। और लगातार रो रहा था।

उसके गाल में एक जोर का थप्पड़ मारते हुए नयन ने कहा—चुप रह हरामजादे। जो मैं पूछूँ—उसका सही-सही उत्तर दे। तुम कितने आदमी थे? उनके नाम और घर का पता बता?

पहले तो उस आदमी ने कुछ नहीं बताना चाहा, परन्तु पीठ पर लाठी का एक हूला और पड़ते ही उसने अपने सब साथियों के नाम और पते बता दिए।

नयन ने कहा—याद रक्खूँगा, भूलूँगा नहीं। अब बता, वैष्णव भिखारी के गिर पड़ने पर तूने उसके शरीर में लाठी के कितने हाथ मारे थे?

वह बोला—पाँच-सात।

नयन ने दाँत पीसते हुए कहा—अच्छा, पाँच-सात हाथ ही सही। अब तू ठीक उसी तरह लेट जा, जिस तरह मैंने उस वैष्णव भिखारी को पड़े हुए देखा था।

फिर मुझ से कहा—भय्या, इधर बढ़ आओ। देखो, इस सोटे के पाँच-सात हाथों में ही इसे समाप्त कर देना चाहिए। देखूँ, तुम्हारे हाथों में कितनी शक्ति है। और साले, तू क्यों देर कर रहा है? लेट...

इतना कह कर नयन ने उसे कान पकड़ कर रास्ते में बैठा दिया तथा उसके स्वयं लेटने से पहले ही उसकी पीठ में कस कर दो-तीन ऐसी लातें जमाईं कि वह औंधे मुँह लोट गया।

तब नयन मुझ से बोला—हाँ भय्या, अब मारो तो ताक कर।

दो-तीन हाथ में ही काम तमाम हो जाएगा, तुम्हें अधिक कष्ट नहीं करना पड़ेगा।

नयनदादा का स्वर बदल गया, उसका चेहरा ही जैसे बदल गया था। उस चेहरे को देख कर मेरे रोएँ खड़े हो गए, हाथ-पाँव काँपने लगे। मैं रुँआसा होता हुआ बोला—मुझसे यह काम नहीं हो सकेगा, नयनदादा।

नयन ने कहा—तुम से न हो सकेगा ? अच्छा तो मैं ही इसे समाप्त किए देता हूँ।

मैंने प्रार्थना के स्वर में कहा—न, नयनदादा, इसे मारो नहीं।

परन्तु वह आदमी जो लात खाकर धरती पर लोट गया था, उसने न तो अब तक अपने हाथ-पाँव हिलाए और न प्राण बचाने के लिए ही कुछ कहा।

मैंने कहा—चलो, इसे बाँधकर थाने में पहुँचा दें।

नयन यह सुनते ही जैसे चौंक पड़ा। बोला—थाने में ? पुलिस के हाथ में ?

मैंने कहा—हाँ, जिस प्रकार इसने एक आदमी को मारा है, उसी प्रकार वे भी इसे फाँसी पर चढ़ावेंगे, जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा।

नयन कुछ देर चुप रहा। तदुपरान्त उस लुटेरे के लाठी का एक और हूला मारता हुआ बोला—अरे उठ।

परन्तु वह हिला-डुला भी नहीं। नयन ने कहा—साला मर गया क्या ? शरीर तो बस हड्डियों का ढाँचा मात्र है, शायद दो-तीन दिन से पेट में अन्न का दाना भी नहीं गया होगा। उस पर चला था दूसरों की हत्या करने, उन्हें लूटने। जा साले दूर हो। उठ कर घर भाग जा।

कह दूँगी। परन्तु ये रुपए मैं नहीं लूँगी नयन। जा, इन्हें अपने ठाकुर जी के भोग में लगा देना। परन्तु, एक बात मैं आज तुझसे कहे देती हूँ, नयन, अभी तू पक्का वैष्णव नहीं हुआ है।

नयन ने पूछा—क्यों माताजी ?

दादी ने कहा—पक्के वैष्णव क्या रुपए बजाकर लोगों को अपराध करने के लिए उकसाते हैं ? मानलो, यदि लुटेरे लोभ को संवरण न करके धावा बोल ही देते तो क्या होता ?

नयन ने कहा—होता क्या, पाँच-छः और भी मर जाते। उससे नयन के पाप का बोझ और कितना भारी होता माताजी ?

दादी चुप बनी रहीं। नयन के इस इशारे का अर्थ या तो वे जानती थीं या जानता था स्वयं नयन। परन्तु उसने भी फिर कुछ नहीं कहा। पृथ्वी पर मस्तक रख कर एवं दूर से ही दादी को प्रणाम कर, वह पाँचों रुपयों को सिर से लगा कर चुपचाप चला गया।

उस दिन इस तत्त्व को मैं नहीं जान पाया और आज तक भी नहीं जान सका हूँ। केवल इसी बात को सोचते-सोचते कुछ दूर आगे निकल जाने पर मैंने पूछा—अच्छा, नयनदादा, वे लोग लौट कर फिर भी किसी मनुष्य की हत्या करेंगे ?

नयन ने कहा—नहीं भैया, अब नहीं करेंगे। जबतक मैं जीवित हूँ, तबतक वे लोग यह काम फिर नहीं करेंगे।

इस उत्तर से मैं अधिक प्रसन्न नहीं हो सका। उन्हें फाँसी होना ही मेरी समझ में उचित था—मुझे पसन्द भी था। मैंने कहा—परन्तु वे लोग हत्या करके बच तो गए—उन्हें दण्ड तो नहीं मिला ?

नयन अनमना होकर कुछ सोच रहा था। बोला—क्या पता, शायद एक दिन दण्ड मिलेगा। परंतु तुरंत ही सचेत होकर बोला—मैं तो इतना नहीं जानता भय्या, तुम्हारी दादी जानती हैं। तुम जब और बड़े हो जाओ, तब किसी दिन उन्हीं से पूछ लेना।

परन्तु और बड़े होने तक मैं सब्र नहीं कर सका, घर में पाँव रखते ही सारा हाल ब्यौरेवार केवल अपने हाथ-पाँव काँपने की व्यर्थ बातें छोड़ कर, मैंने अपनी दादी के सामने, आँख-मुँह-हाथ आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग के यथोचित सञ्चालन सहित विस्तारपूर्वक कह सुनाया। प्रारम्भ से अन्त तक हम लोगों की इस लुटेरा-विजय की कथा को सुनकर दादी ने एक निश्वास छोड़ी तथा मुझे छाती के समीप खींच-कर सुन्न-सी बैठी रहीं।

नयन अभी तक चुपचाप सुन रहा था। मेरी बात समाप्त होते ही पाँचों रुपए दादी के पाँवों के पास रखते हुए उसने कहा—माताजी, गाय तो यों ही मिल गई, आपके रुपए आपके पास ही लौट आए। न लिए बुआ ने और न लिए आपकी मँझली बहू के भाइयों के दल ने राह में ही।

दादी ने तनिक हँसते हुए कहा—भेंट होने पर मँझली बहू से

कह दूँगी। परन्तु ये रुपए मैं नहीं लूँगी नयन। जा, इन्हें अपने ठाकुर जी के भोग में लगा देना। परन्तु, एक बात मैं आज तुझसे कहे देती हूँ, नयन, अभी तू पक्का वैष्णव नहीं हुआ है।

नयन ने पूछा—क्यों माताजी ?

दादी ने कहा—पक्के वैष्णव क्या रुपए बजाकर लोगों को अपराध करने के लिए उकसाते हैं ? मानलो, यदि लुटेरे लोभ को संवरण न करके धावा बोल ही देते तो क्या होता ?

नयन ने कहा—होता क्या, पाँच-छै: और भी मर जाते। उससे नयन के पाप का बोझ और कितना भारी होता माताजी ?

दादी चुप बनी रहीं। नयन के इस इशारे का अर्थ या तो वे जानती थीं या जानता था स्वयं नयन। परन्तु उसने भी फिर कुछ नहीं कहा। पृथ्वी पर मस्तक रख कर एवं दूर से ही दादी को प्रणाम कर, वह पाँचों रुपयों को सिर से लगा कर चुपचाप चला गया।